खंड-11 अस्पताल प्रशासन के विधिक पहलू

प्रस्तावना

हमारे देश में अन्य सेवा संस्थाओं की ही तरह अस्पताल भी सामाजिक व्यवस्था का एक हिस्सा हैं। पूर्ववर्ती ष्खण्डों ष में कुछ हद तक अस्पतालों की कार्यप्रणाली के विधिक पहलुओं के बारे में चर्चा की गई है।

समाज में व्यक्तियों तथा समूहों के नियामक आदेशात्मक व्यवहार के बारे में कानून बनाए गए हैं जिनमें निवारण तथा किसी भी प्रकार के अतिलंघन के लिए सुधारात्मक दंड विधान का प्रा वधान रखा गया है। तथापि आमतौर पर अस्पतालों अथवा उनके कर्मचारी और उपकरणों से संबंधित कोई विशिष्ट कानून नहीं है। ऐसी स्थितियों में इस बात का महत्व और भी बढ़ जाता है कि अस्पताल प्रशासक को उन कानूनों/विधियों को अनिवार्य रुप से समझना चाहिए, जिनका असर अस्पताल की कार्यप्रणाली पर पड़ता है। कानून की प्रयोज्यता खास तौर पर रोगी की सहमति, साक्ष्य, गोपनीयता कायम रखने, चिकित्सीय स्तर पर लापरवाही, ठगी या धोखे से संबंधित कानून और अंग प्र ात्यारोपण अधिनियम पर विशेष घ्यान देने की आवश्यकता है।

चिकित्सा-विधिक कर्त्तव्यों के निर्वहन में चिकित्सक की भूमिका विशेषरुप से चुनौती भरी होती है क्योंकि इसमें चिकित्सक, वकील और पुलिस अधिकारी इन तीनों के कौशलों का मेल होता है। चिकित्सक की चिकित्सीय विधिक भूमिका की कोई निर्धारित सीमाएं नहीं होती हैं। चिकित्सीय ि वधिक मामलें की पहचान, रोगी की बीमारी का समेकित विवरण, पुलिस को दिए गए बयान का अभिसाक्ष्यांकन, इत्यादि से चिकित्सक की भागीदारी महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ नाजुक भी हो जाती है। ष्मृत्यु प्रमाण पत्र ष/मृत्यु की घोषणा संबंधी दस्तावेज की शुद्धता और उपयोगिता को समझने और उसे विभाग में रखने की आवश्यकता है, क्योंकि कतिपय मामलों में यह दस्तावेज अत्याधिक महत्वपूर्ण हो सकता है।

पिछले कुछ दिनों में चिकित्सा, परिचर्या (नर्सिग) तथा अन्य प्रोफेशनल से संबद्ध व्यक्तियों को ज्ञान (ethics) एवं व्यवहार में लाने की अहमियत बहुत अधिक बढ़ गई है। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम बनने से अस्पताल प्रशासन के कार्यरुप को महत्वपूर्ण मोड़ जुड़ गया है। इस खंड में, इन सभी पक्षों को समाहित करने के साथ-साथ आगे और जानकारी प्राप्त करने हेतु अतिरिक्त पाठ्य सामग्री का भी उल्लेख किया गया है।

उद्देश्य

इस खंड के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी निम्नलिखित पहलू समझ पाएंगे :

1. अस्पतालों पर लागू होने वाले कानून।
2. चिकित्सा विधिक मामले के निपटान से संबंधित महत्वपूर्ण चिकित्सीय - विधिक मुद्दों की समझ।
3. रोगी के इलाज से संबद्ध नीतिगत (ethical) मुद्दे।

यूनिट

यूनिट-1 अस्पतालों पर लागू होने वाले कानून
यूनिट-2 चिकित्सा विधिक मामले और कानूनी उत्तरदायित्व
यूनिट-3 चिकित्सीय आचार

यूनिट-1 अस्पतालों पर लागू होने वाले कानून

रु परेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

- 1.2.1 विधि
- 1.2.2 विधि एवं अस्पताल

1.3 विधि से संबद्ध धाराएं

- 1.3.1 भारतीय अभिसाक्ष्य अधिनियम (1872)
- 1.3.2 आपराधिक प्रक्रिया संहिता (1973)
- 1.3.3 भारतीय दंड विधान संहिता (1860)

1.4 चिकित्सक-रोगी-संबंध

- 1.4.1 रोगी के अधिकार
- 1.4.2 रोगी के कर्त्तव्य
- 1.4.3 चिकित्सक के अधिकार
- 1.4.4 चिकित्सक के कर्त्तव्य

1.5 सहमति

- 1.5.1 सहमति के विधिक पक्ष
- 1.5.2 पति/पत्नी की सहमति
- 1.5.3 ऐसी स्थितियां जब सहमति अपेक्षित नहीं होती है।

1.6 चिकित्सा अधिकारी की कोर्ट रु म ड्यूटी

1.7 अस्पताल से जुड़े कानून

- 1.7.1 जन्म मृत्यु पंजीयन
- 1.7.2 ठगी संबंधी विधि
- 1.7.3 उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम
- 1.7.4 चिकित्सक/अस्पताल के विरु द्ध चिकित्सा के समय लापरवाही का मुकदमा
- 1.7.5 अंग प्रत्यारोपण अधिनियम
- 1.7.6 चिकित्सीय गर्भपात अधिनियम
- 1.7.7. प्रसव-पूर्व नैदानिक तकनीक अधिनियम
- 1.7.8 औषधि एवं प्रसाधन अधिनियम
- 1.7.9 जैव-चिकित्सीय अवशिष्ट पदार्थ प्रबंधन एवं हैंडलिंग नियम

1.8 प्रशासन से संबद्ध कानून

- 1.8.1 औद्योगिक विवाद अधिनियम
- 1.8.2 न्यूनतम पारिश्रमिक अधिनियम
- 1.8.3 कर्मकार प्रतिपूर्ति अधिनियम

1.8.4 मातृत्व अनुलाभ अधिनियम 1961
1.8.5 नए विधिक मुद्दे - सीईआरए, एमओसीआरए

1.9 यूनिट की समीक्षा संबंधी प्रश्न
1.10 सुझाई गई पाठ्य सामग्री एवं संदर्भ साहित्य

1.1 उद्देश्य

इस यूनिट के अध्ययनोपरांत आपः

1. अस्पतालों से संबद्ध विधि को समझ पाएंगे
2. अस्पताल की कार्यप्रणाली में शामिल विभिन्न स्थितियों में इसके अनुप्रयोग के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

1.2 प्रस्तावना

अस्पताल के प्रशासक को कानून के विषय में कुछ मूलभूत तथ्यों की जानकारी रखनी पड़ती है ताकि अनजाने में भी उससे विधि-विरुद्ध कार्य न हो।

1.2.1 विधि

षविधि ष को नियम एवं विनियम के ऐसे समूह के रुप में परिभाषित किया जाता है जिसे इस प्रयोजन से तैयार किया गया है कि लोग शांति व सदभावपूर्वक रहें।

षविधि ष में - षविधि द्वारा निर्धारित ष समूहों के नियामक एवं आदेशात्मक व्यवहार का अनुपालनन अपेक्षित है जिसका उल्लंघन होने पर विधि द्वारा निर्धारित विभिन्न विधियों और पद्धतियों (यथा कैद, दण्ड इत्यादि) के माध्यम से समाज द्वारा निवारक एवं सुधारात्मक दण्ड दिया जाता है।

विधि की मूल मान्यता यह है कि इसमें दण्ड के परिहार की कोई गुंजाइश नहीं है। यद्यपि कतिपय विशिष्ट स्थितियों में विधि में स्पष्ट रुप से किसी धारा विशेष के तहत सजा की जानकारी और आशय को स्पष्ट रुप से परिभाषित किया गया है, फिर अभियुक्त को सिद्ध करना पड़ता है कि ऐसा कृत्य करना उसका आशय नहीं था।

भारत के विधि विधान में बड़े परिवर्तन बहुत कम होते हैं। प्रत्युत विभिन्न फैसलों से इसका क्षेत्र और व्यापक हो जाता है, जिसमें इसका सटीक निर्वचन किया जाता है और इस प्रकार कालांतर में ऐसा समझा जाता है कि इसमें परिवर्तन हुआ है। इसी प्रकार, संशोधनों से कतिपय (समस्याग्रस्त) क्षेत्रों को ठीक करने में भी मदद मिलती है।

1.2.2 विधि एवं अस्पताल

संसद के विशिष्ट अधिनियमों द्वारा निर्धारित अपवादों को छोड़कर (यथा - अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान अधिनियम, 1956 इत्यादि) अस्पतालों और वहां कार्यरत कार्मिकों एवं उपस्कर, उपकरण इत्यादि से संबंधित कोई विशिष्ट कानून नहीं है। तथापि, विभिन्न प्रकार के अस्पतालों के लिए कार्मिक एवं बुनियादी ढाँचे की जाँच हेतु बनी समितियों द्वारा कुछ प्रतिवेदन प्रस्तुत किए गए हैं। तत्कालीन स्वास्थ्य सेवा महानिदेशक, डा.आई.डी.बजाज द्वारा प्रस्तुत बजाज समिति प्रतिवेदन इनमें से एक है। इसी प्रकार, मार्च, 1992 में राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान द्वारा तैयार किए गए डा.ए.के.अग्रवाल और डा.टी.आर.आनन्द द्वारा विभिन्न आकार के अस्पतालों के लिए उपस्करों संबंधी प्रतिमानों के मार्गदर्शी सिद्धान्त भी हैं। पंजाब चिकित्सीय नियम पुस्तक, 1931 में अस्पतालों के साथ-साथ विभिन्न श्रेणियों के कर्मचारियों की नियुक्ति, ड्यूटी एवं भत्ते के संबंध में विस्तार से उल्लेख किया गया है। चूकि अखिल भारतीय चिकित्सा सेवा जैसा कोई संगठन नहीं है, अतः ऐसी उम्मीद है कि अस्पताल और अस्पताल के कर्मचारी संबंधित राज्यों अथवा संगठनों (यथा रेलवे, सशस्त्र बल इत्यादि) द्वारा बनाए गए नियमों का अनुपालन करते हैं।

1.3 विधि संगत धाराएं

निम्नांकित धाराएं इन अधिनियमों की संगत धाराओं के कुछ महत्वपूर्ण संगत धाराओं से जुड़ी हैं जिनकी आवश्यकता सामान्यतया प्रैक्टिस/सर्विस में पड़ती है।

1.3.1 भारतीय साक्ष्य अधिनियम (1872)

इस अधिनियम में तथ्यों की संगतता और साक्ष्य दिए जाने एवं इन्हें लागू किए जाने से संबंधित तीन प्रमुख भाग हैं और ग्यारह-अध्याय (जिसमें 167 धाराएं हैं), जो प्राथमिक/आरंभिक प्र ाास्थितियां, तथ्यों की संबद्धता, ऐसे तथ्य, जिन्हें सिद्ध किए जाने की जरु रत है, मौखिक एवं दस्ता वेजी प्रमाण तथा इसका लोप, सबूत का भार, साक्ष्य का परीक्षण और अभिसाक्ष्यों की अनुचित स्- वीकारोक्ति/प्रस्तुतीकरण आदि शामिल हैं। कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर नीचे चर्चा की गई है।

धारा 45 विशेषज्ञों की राय

जब न्यायालय को किसी विदेशी विधि अथवा विज्ञान अथवा कला के बारे में अथवा हस्ताक्षर की शिनाख्त करने के बारे में राय कायम करनी होती है। उस संदर्भ में ऐसे बाह्य विधि, विज्ञान अथ वा कला (अथवा हस्ताक्षर) की शिनाख्त का जहां प्रश्न हो उस क्षेत्र विशेष में दक्ष व्यक्तियों द्वारा प्र ास्तुत टिप्पणी को संबद्ध तथ्य को प्रमाणिक माना जाता है ऐसे व्यक्ति विशेषज्ञ कहलाते हैं

धारा-61 दस्तावेजों की अन्तर्वस्तु का प्रमाण

दस्तावेजों की अन्तर्वस्तु प्रमुख या गौण साक्ष्य द्वारा सिद्ध किया जा सकता है।

धारा-62 प्रमुख साक्ष्य

प्रमुख साक्ष्य का तात्पर्य न्यायालयी जांच हेतु प्रस्तुत किया गया दस्तावेज है।

स्पष्टीकरण 1 यदि दस्तावेज अनेक हिस्सों में निष्पादित किया जाता है तो प्रत्येक भाग इस दस्तावेज का प्रमुख साक्ष्य होता है। जब कोई दस्तावेज प्रतिपक्ष के रुप में निष्पादित किया जाता है तो प्रत्येक प्रतिपक्ष किसी एक अथवा कुछ पक्षों द्वारा निष्पादित होता है, तो प्रत्येक प्रतिपक्ष निष्पादित करने वाले संबंधित पक्षों का प्रमुख साक्ष्य होता है।

स्पष्टीकरण 2 जब कई दस्तावेज किसी एक ही समान प्रक्रिया से बनाए जाते हैं जैसे कि मुद्रण, लिथोग्राफी अथवा फोटोग्राफी के मामले तो प्रत्येक शेष अंतर्वस्तु का प्रमुख साक्ष्य होता है, किन्तु जहां ये एक ही मूल दस्तावेज की प्रतियां हों वहां वे मूल दस्तावेज की अंतर्वस्तु का प्रमुख साक्ष्य नहीं होते हैं।

धारा 63 गौण साक्ष्यः - गौण साक्ष्य का अभिप्राय निम्न से हैः

क. अन्तर्विष्ट उपबंधों के तहत कतिपय प्रमाणित प्रतियां;
ख. यांत्रिक प्रक्रियाओं द्वारा मूल से बनाई गई प्रतियां जिनमें प्रति की सटीकता सुनिश्चित होती है और ऐसी प्रतियों से मिलाई गई प्रतियां;
ग. मूल से बनाई गई अथवा मिलाई गई प्रतियां;
घ. कागजात निष्पादित न करने वाले पक्षों से संबंधित दस्तावेजों के प्रतिपक्ष;
ड. ऐसे किसी व्यक्तियों द्वारा दिए गए दस्तावेज के मौखिक ब्यौरे जिन्होंने स्वयं इसे देखा है।

धारा-159 पुनश्चर्यापरक-स्मृति

जाँच के दौरान, गवाह संदर्भगत लेन-देन के समय स्वयं द्वारा की लिखाई या लेखन को देखकर अंतर्वस्तु को याद कर सकता है या न्यायालय यह मान सकता है कि साक्षी को उस समय सब याद था।

साक्षी किसी दूसरे व्यक्ति के लेखन का संदर्भ दे सकता है और पढ़ते समय वह जानता है कि वह ठीक है तो उपर्युक्त समय सीमा के भीतर पढ़ सकता है।

स्मृति ताजी करने के लिए साक्षी किसी दस्तावेजल की प्रति का प्रयोग कर सकता है। जब कभी भी कोई साक्षी किसी दस्तावेज के हवाले से अपनी स्मृति ताजी करनी हो तब वह न्यायालय की अनुमति से ऐसे दस्तावेज की प्रति ले सकता है।

बशर्ते न्यायालय इस तथ्य से संतुष्ट हो कि मूलप्रति को प्रस्तुत नहीं किए जाने का पर्याप्त कारण है।

कोई विशेषज्ञ अध्यावसायिक (Professional) कागजातों के जरिए अपनी स्मृति ताजी कर सकता है।

धारा-160 धारा 159 में उल्लिखित दस्तावेज में वर्णित तथ्यों का प्रमाणन (Testimony)

कोई साक्षी धारा 159 में यथोल्लिखित ऐसे किसी दस्तावेज में वर्णित तथ्यों को प्रमाणित भी कर सकता है, भले ही उसे विशिष्ट तथ्य याद नहीं हों।

धारा-162 दस्तावेज प्रस्तुत करना

दस्तावेज प्रस्तुत करने हेतु बुलाया गया साक्षी, यदि वह दस्तावेज उसके पास हो, इसे प्र ास्तुत करने अथवा अभिस्वीकृति के बारे में आपत्ति होते हुए भी न्यायालय में लेकर जाएगा।

यदि न्यायालय उचित समझे तथा यह, राज्य के मामले से संबद्ध हो अथवा इसकी स्- वीकार्यता निर्धारित करने हेतु कोई इसका साक्ष्य नहीं लेता तो दस्तावेज की जाँच भी कर सकता है।

1.3.2 आपराधिक प्रक्रिया संहिता (1973) (सी.पी.सी.)

आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत निम्नांकित संगत धाराएं हैं :

धारा - 53 पुलिस अधिकारी के अनुरोध पर चिकित्सा व्यावसायी (मेडिकल प्रेक्टिसनर द्वारा अभियुक्त की परीक्षा

(1) जब कोई व्यक्ति ऐसा अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जाता है तो ऐसी प्रकृति का है और जिसका ऐसी परिस्थितियों में किया जाना अभिकथित है कि यह विश्वास करने के उचित आधार है कि उसकी शारीरिक परीक्षा ऐसे अपराध किए जाने के बारे में साक्ष्य प्र ादान करेगी, तो ऐसे पुलिस अधिकारी की जो उप निरीक्षक की पंक्ति से नीचे का न हो, प्र ार्थना पर कार्य करने में रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी के लिए और सद्भावपूर्वक उसकी सहायता करने में और उसके निदेशाधीन कार्य करने में किसी व्यक्ति के लिए यह अधिपूर्ण

होगा कि वह गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की ऐसी परीक्षा करे जो उन तथ्यों का जो ऐसा साक्ष्य प्रदान कर सकें, अभिनिश्चित करने के लिए आवश्यक है और उतना बल प्रयोग करे जितना इस प्रयोजन के लिए उचित रुप से आवश्यक है।

(2) जब कभी इस धारा के अधीन किसी स्त्री की शारीरिक परीक्षा की जानी है तो ऐसी परीक्षा किसी महिला द्वारा जो रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी है या उसके पर्यवेक्षण में की जाएगी।

स्पष्टीकरण - इस धारा में और धारा -54 में ष्रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी ष से ऐसा चिकित्सा व्यवसायी अभिप्रेत है जिसके पास भारतीय चिकित्सा परिषद अधिनियम, 1956 (1956 का 102) में यथा परिभाषित कोई मान्यता प्राप्त चिकित्सकीय अर्हता है तथा जिसका नाम राज्य चिकित्सा रजिस्टर में दर्ज कर लिया गया है।

धाराः 54 - गिरफ्तार व्यक्ति की प्रार्थना पर चिकित्सा व्यवसायी द्वारा गिरफ्तार व्यक्ति की परीक्षा -

जब कोई व्यक्ति, जो चाहे किसी अरोप पर या अन्यथा, गिरफ्तार किया गया है, मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किए जाने के समय या अभिरक्षा में अपने निरोध की अवधि के दौरान किसी समय यह अभिकथन करता है कि उसके शरीर की परीक्षा से ऐसा साक्ष्य प्राप्त होगा, जो उसके द्वारा किसी अपराध के किए जाने को नासाबित कर देगा या जो साबित करेगा उसके शरीर के विरुद्ध किसी अन्य व्यक्ति ने कोई अपराध किया या तो यदि गिरफ्तार व्यक्ति द्वारा मजिस्ट्रेट से ऐसा करने के लिए प्रार्थना की जाती है और यदि मजिस्ट्रेट का यह विचार नहीं है कि प्रार्थना तंग करने या विलंब करने या न्याय के उद्देश्यों को विफल करने के लिए की गई है तो वह यह निदेश देगा कि रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यसवासी द्वारा ऐसे व्यक्ति के शरीर की परीक्ष की जाए।

सम्मन जारी करना

धाराः 66 - सरकारी सेवक पर तामील

(1) जहां सम्मन किया गया व्यक्ति सरकार की सक्रिय सेवा में है, वहां सम्मन जारी करने वाला न्यायालय मामूली तौर पर ऐसा सम्मन दो प्रतियों में उस कार्यालय के प्रधान को भेजेगा, जिसमें वह व्यक्ति सेवक है और तब वह प्रधान धारा 62 में उपबन्धित प्रकार से सम्मन की तामील कराएगा और उस धारा द्वारा अपेक्षित पृष्ठांकन सहित उस पर अपने हस्ताक्षर करके उसे न्यायालय को लौटा देगा।

(2) ऐसा हस्ताक्षर सम्यक तामील का साक्ष्य होगा।

धारा 154 : संज्ञेय मामलों में इत्तिला

(1) संज्ञेय अपराध के किए जाने से संबंधित प्रत्येक इत्तिला यदि पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को मौखिक दी गई है तो उसके द्वारा या उसके निदेशाधीन लेखबद्ध कर ली जाएगी और इत्तिला देने वाले को पढ़कर सुनाई जाएगी और प्रत्येक ऐसी इत्तिला पर चाहे वह लिखित रुप में दी गई हो या पूर्वोक्त रुप में लेखबद्ध की गई हो, उस व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगी जो उसे दे और उसका सार ऐसी पुस्तक में, जो उस अधिकारी द्वारा ऐसे रुप में रखी जाएगी, जिसे राज्य सरकार इस निमित निहित करे प्रविष्ट किया जाएगा।

(2) उपधारा(1) के अधीन अभिलिखित इत्तिला की प्रतिलिपि इत्तिला देने वाले को तत्काल निशुल्क दी जाएगी।

(3) कोई व्यक्ति, जो किसी पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी के उपधारा(1) में निर्दिष्ट इत्तिला को अभिलिखित करने में इंकार करने से व्यथित है, ऐसी इत्तिला का सार लिखित रुप में और डाक द्वारा संबद्ध पुलिस अधीक्षक को भेज सकता है जो, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि ऐसी इत्तिला से किसी संज्ञेय अपराध का किया जाना प्रकट होता तो, या तो स्वयं मामले का अन्वेषण करेगा या अपने अधीनस्थ किसी पुलिस अधिकारी द्वारा इस संहिता द्वारा उपबन्धित रीति में अन्वेषण किए जाने का निदेश देगा और उस अधिकारी को उस अपराध के संबंध में पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी की सभी शक्तियां होंगी।

धारा 155 असंज्ञेय मामलों के बारे में इत्तिला और ऐसे मामलों का अन्वेषण

(1) जब पुलिस थाने के भार साधक अधिकारी को उस थाने की सीमाओं के अंदर असंज्ञेय अपराध के किए जाने की इत्तिला दी जाती है तब वह ऐसी इत्तिला का सार, ऐसी पुस्तक में, जो ऐसे अधिकारी द्वारा ऐसे प्ररुप में रखी जाएगी, जो राज्य सरकार इस निमित्त विहित करे, प्रविष्ट करेगा या प्रविष्ट कराएगा और इत्तिला देने वाले को मजिस्ट्रेट के पास जाने को निदेशित करेगा।

(2) कोई पुलिस अधिकारी, किसी असंज्ञेय मामले का अन्वेषण ऐसे मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना नहीं करेगा जिसे ऐसे मामले का विचारण करने की या मामले को विचारार्थ सुपुर्द करने की शक्ति है।

(3) कोई पुलिस अधिकारी ऐसा आदेश मिलने पर (वारंट के बिना गिरफ्तारी करने की शक्ति के सिवाय) अन्वेषण के बारे में वैसे ही शक्तियों का प्रयोग कर सकता है जैसी पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी संज्ञेय मामले में कर सकता है।

(4) जहाँ मामले का संबंध ऐसे दो या अधिक अपराधों से है, जिनमें से कम से कम एक संज्ञेय है, वहां इस बात के हुए भी कि अन्य अपराध असंज्ञेय है, वह मामला संज्ञेय मामला समझा जाएगा।

धारा 175 - व्यक्ति को सम्मन करने की शक्ति

(1) धारा 174 के अधीन कार्यवाही करने वाला पुलिस अधिकारी यथापूर्वक दो या अधिक व्यक्तियों को उक्त अन्वेषण के प्रयोजन से और किसी अन्य ऐसे व्यक्ति को, जो मामले के तथ्यों से परिचित प्रतीत होता है, लिखित आदेश द्वारा सम्मन कर सकता है, तथा ऐसे सम्मन किया गया प्रत्येक व्यक्ति हाजिर होने के लिए और उन प्रश्नों के सिवाय, जिनके उत्तरों की प्रवृति उसे आपराधिक आरोप या शक्ति या समापहरण की आशंका में डालने की है, सब प्र श्नों का सही-सही उत्तर देने के लिए आबद्ध होगा।

(2) यदि तथ्यों से ऐसा संज्ञेय अपराध, जिस पर धारा 170 लागू है प्रकट नहीं होता है तो पुलिस अधिकारी ऐसे व्यक्ति से मजिस्ट्रेट के न्यायालय में हाजिर होने की अपेक्षा न करेगा।

मजिस्ट्रेट के समक्ष कार्यवाहियां

धारा 205. मजिस्ट्रेट का अभियुक्त को वैयक्तिक हाजिरी से अभिमुक्ति दे सकना

(1) जब कभी कोई मजिस्ट्रेट सम्मन जारी करता है तब यदि उसे ऐसा करने का कारण प्रतीत होता है तो वह अभियुक्त को वैयक्तिक हाजिरी से अभिमुक्त कर सकता है और अपने प्लीडर द्वारा हाजिर होने की अनुज्ञा दे सकता है।

(2) किन्तु मामले की जांच या विचारण करने वाला मजिस्ट्रेट, स्वविवेकानुसार, कार्यावाही के किसी प्रक्रम में अभियुक्त की वैयक्तिक हाजिरी का निदेश दे सकता है और यदि आवश्यक हो तो उसे इस प्रकार हाजिर होने के लिए इसमें इसके पूर्व उपबन्धित रीति से विवश कर सकता है।

धारा 291 चिकित्सीय साक्षी का अभिसाक्ष्य

(1) अभियुक्त की उपस्थिति में मजिस्ट्रेट द्वारा लिया गया और अनुप्रमाणित किया गया या इस अध्याय के अधीन कमीशन पर लिया गया, सिविल सर्जन या अन्य चिकित्सीय साक्षी का अभिसाक्ष्य इस संहिता के अधीन किसी जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही में साक्ष्य में दिया जा सकेगा, यद्यपि अभिसाक्षी को साक्षी के तौर पर नहीं बुलाया गया है।

(2) यदि न्यायालय ठीक समझता है, तो वह ऐसे किसी अभिसाक्षी को सम्मन कर सकता है और उसके अभिसाक्ष्य की विषयवस्तु के बारे में उसकी परीक्षा कर सकता है और अभियोजन या अभियुक्त के आवेदन पर वैसा करेगा।

धारा 293 कतिपय सरकारी वैज्ञानिक विशेषज्ञों की रिपोर्टें

(1) कोई दस्तावेज,जो किसी सरकारी वैज्ञानिक विशेषज्ञ की, जिसे यह धारा लागू होती है, इस संहिता के अधीन किसी कार्यवाही के दौरान परीक्षा या विश्लेषण और रिपोर्ट के लिए सम्यक् रुप से उसे भेजी गई किसी सामग्री या चीज के बारे में स्वहस्ताक्षरित रिपोर्ट होनी तात्पर्यित है, इस संहिता के अधीन किसी जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही में साक्ष्य के तौर पर उपयोग में लाई जा सकेगी।

(4) यह धारा निम्नलिखित सरकारी वैज्ञानिक विशेषज्ञों को लागू होती है, अर्थात्

क. सरकार का कोई रासायनिक परीक्षक या सहायक रायायनिक परीक्षक
ख. मुख्य विस्फोटक निरीक्षक
ग. अंगुलि-छाप कार्यालय निदेशक
घ. निदेशक, हाफकीन संस्थान, मुम्बई
ड. किसी केन्द्रीय न्याय संबंधी विज्ञान प्रयोगशाला या किसी राज्य न्याय संबंधी विज्ञान प्रयोगशाला का निदेशक, उप निदेशक अथवा सहायक निदेशक
च. सरकारी सीरम विज्ञानी,

1.3.3 भारतीय दंड संहिता (1880) (आई.पी.सी.)

कुछ सम्बद्ध उपबन्ध निम्नानुसार हैं :

51. **ष्शपथ** ष के लिए विधि द्वारा प्रतिस्थापित सत्यनिष्ठ-प्रतिज्ञान और ऐसी किसी घोषणा, जिसका किसी लोक-सेवक के समक्ष किया जाना या न्यायालय में या अन्यत्र सबूत के प्रयोजन के लिए उपयोग किया जाना अपेक्षित है या प्राधिकृत हो, ष्शपथ ष शब्द के अंतर्गत आती है।

52. **ष सदभावपूर्वक** ष - कोई बात ष्सदभावपूर्वक ष की गई या विश्वास की गई नहीं कही जाती, जो सम्यक् और ध्यान के बिना की नई या विश्वास की गई हो।

90. सम्मति, जिसके संबंध में यह ज्ञात हो कि वह भय या भ्रम के अधीन दी गई है - सम्मति ऐसी सम्मति नहीं है, जैसी इस संहिता की किसी धारा से आशयित हैः यदि वह सम्मति किसी व्यक्ति ने क्षति भय के अधीन, या तथ्य के भ्रम के अधीन दी हो, और यदि कार्य करने

वाला व्यक्ति यह जानता हो या उसके पास विश्वास करने का कारण हो कि ऐसा भय या भ्रम के परिणामस्वरुप वह सम्मति दी गई है; अथवा

उन्मुक्त व्यक्ति की सम्मति - यदि वह सम्मति ऐसे व्यक्ति ने दी हो जो चित्त विकृति या मत्तता के कारण उस बात को, जिसके लिए वह अपनी सम्मति देता है, प्रकृति और परिणाम समझने में असमर्थ हो; अथवा

शिशु की सम्मति - जब तक कि संदर्भ से तत्प्रतिकूल प्रतीत न हो, यदि वह सम्मति ऐसे व्यक्ति ने दी हो, जो बारह वर्ष से कम आयु का है।

92 सम्मति के बिना किसी व्यक्ति के फायदे के लिए सद्भावपूर्वक किया गया कार्य-कोई बात, जो किसी व्यक्ति के फायदे के लिए सद्भावपूर्वक, यद्यपि उसकी सम्मति के बिना की गई है, ऐसी किसी अपहानि के कारण, जो उस बात से उस व्यक्ति को कारित हो जाए, अपराध नहीं है, यदि परिस्थितियां ऐसी हों कि उस व्यक्ति के लिए यह असंभव हो कि वह अपनी सम्मति प्रकट करे या वह व्यक्ति सम्मति देने के लिए असमर्थ हो और उसका कोई संरक्षक या उनका विधिपूर्ण भारसाधक कोई दूसरा व्यक्ति न हो, जिससे ऐसे समय पर सम्मति अभिप्राप्त करना संभव हो कि वह बात फायदे के साथ की जा सके,

परंतुक - परन्तु

पहला - इस अपवाद का विस्तार साशय मृत्युकारित करने का प्रयत्न करने पर होगा;

दूसरा - इस अपवाद का विस्तार मृत्यु या घोर उपहति के निवारण के, या किसी भी रोग या अंग शैथिल्य से मुक्त करने के प्रयोजन से भिन्न किसी प्रयोजन के लिए किसी ऐसी बात करने पर न होगा, जिसे करने वाला व्यक्ति जानता हो कि उससे मृत्यु कारित होना असंभव है;

तीसरा- इस अपवाद का विस्तार मृत्यु या उपहति के निवारण के प्रयोजन से भिन्न किसी प्रयोजन के लिए स्वेच्छया उपहति कारित करने या उपहति कारिति करने का प्रयत्न करने पर न होगा।

चौथा - इस अपवाद का विस्तार किसी ऐसे अपराध के दुष्प्रेरण पर न होगा, जिस अपराध के किए जाने पर इसका विस्तार नहीं है।

दृष्टान्त

क. शल्यचिकित्सक रोगी को सद्भावपूर्वक यह संसूचित करता है कि उसकी राय में वह जीवित नहीं रह सकता। इस आघात के परिणामस्वरुप रोगी की मृत्यु हो जाती है। ष्क ष ने कोई अपराध नहीं किया है। यद्यपि वह जानता कि संसूचना से उस रोगी की मृत्यु कारित होना संभाव्य है।

174 **लोक सेवक का आदेश न मानकर गैर हाजिर रहना** - जो कोई किसी लोक सेवक द्वारा निकाले गए उस सम्मन, सूचना, आदेश या उद्घोषणा के पालन में है जिसे ऐसे लोक से वक के नाते निकालने के लिए वह वैध रुप से सक्षम हो, किसी निश्चित स्थान और समय पर स्वयं या अभिकर्ता द्वारा हाजिर होने के लिए वैध रुप से आबद्ध होते हुए, उस स्थान या समय पर हाजिर होने का साशय लोक करेगा, या उस स्थान से, जहां हाजिर होने के लिए वह आबद्ध है, उस समय से पूर्व चला जाएगा, जिस समय चला जाना उसके लिए विधि पूर्ण होता, वह सादा कारावास से, जिसकी अवधि एक मास तक की हो सकेगी या जुर्माना से, जो पांच सो रुपए तक का हो सकेगा या दोनों से,

अथवा, यदि सम्मन, सूचना, आदेश या उदघोषणा किसी न्यायालय में स्वयं या किसी अभिकर्ता द्वारा हाजिर होने के लिए है, तो वह सादा कारावास से, जिसकी अवधि छः मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से दंडित किया जाएगा।

197 मिथ्या प्रमाणपत्र जारी करना या हस्ताक्षर करना

जो कोई किसी प्रमाणपत्र, जिसका दिया जाना या हस्ताक्षरित किया जाना विधि द्वारा अपेक्षित हो, या जो किसी ऐसे तथ्य से संबंधित हो, जिसका वैसा प्रमाणपत्र विधि द्वारा साक्ष्य में ग्राह्य हो, यह जानते या विश्वास करते हुए कि वह किसी तात्विक बात के बारे में मिथ्या है, वैसा प्रमाणपत्र जारी करेगा या हस्ताक्षरित करेगा, वह उसी प्रकार दंडित किया जाएगा, मानो उसने मिथ्या साक्ष्य दिया हो।

1.4 चिकित्सक-रोगी का संबंध

यह चिकित्सा वृत्ति का मूल तत्व है और पूर्वकाल से ही इसे पवित्र माना जाता रहा है जबकि वर्तमान समय में यह संविदा रुप में बदल गया है। आरंभिक काल में, चिकित्सक रोगी से कुछ भी नहीं मांगते थे बल्कि स्वैच्छिक दान से ही जीवन-निर्वाह करते थे लेकिन अब चिकित्सकगण अध्यावसायिक सलाह के बदले शुल्क मांगने लगे हैं जिससे चिकित्सक रोगी के संबंध में बदलाव आया है। आज की तारीख में, यह संबंध संविदात्मक है जो कि संविदा अधिनियम के तहत आता है, जिसमें दोनों पक्षों अर्थात चिकित्सक एवं रोगी के अधिकार एवं कर्त्तव्य दिए गए हैं।

1 .4.1 रोगी के अधिकार

क. स्वेच्छापूर्वक चिकित्सक का चयन करने का अधिकारः यद्यपि यह रोगी का मौलिक अधिकार है, तथापि यदा-कदा निम्नांकित परिस्थितियों में उसे इसका त्याग करना पड़ सकता है।

i. जब उसकी पंसद का चिकित्सक उपलब्ध न हो

ii. रोगी ने चिकित्सा बीमा करवाया हो अथवा केन्द्रीय स्वास्थ्य योजना, कर्मचारी राज्य बीमा का लाभार्थी होः उस-स्त्री/पुरुष को पैनल में शामिल चिकित्सक के पास ही जाना होगा।

iii. भर्ती के प्रयोजनों से, उसे चुने गए डॉक्टरों के बोर्ड से ही अनुमति लेनी पड़ सकती है।

iv. चिकित्सीय जांच हेतु न्यायालय के निदेशानुसार

v. अचेत रोगियों के मामले में संबंधियों/परिचर की सहमति से कोई भी डाक्टर इलाज कर सकता है।

ख. **सूचना का अधिकार** - रोगी को रोग के नियोजित इलाज, उपलबध विकल्प, इलाज के प्रोग्राम एवं उस पर आनेवाले व्यय की जानकारी पाने का पूर्ण अधिकार है।

ग. **एकान्त का अधिकारः** जांच करते समय, चिकित्सक को नोट करना चाहिए कि कोई बाहरी आदमी/अवांछित व्यक्ति वहां उपस्थित नहीं हो।
किसी पुरुष चिकित्सक से महिला रोगियों की जांच करते समय विशेष सावधानी बरतना चाहिए। ऐसी स्थिति में नर्स/परिचर को उपस्थित रहना चाहिए।

घ. **गोपनीयता का अधिकार** - रोग और इलाज के बारे में सभी जानकारी गोपनीय रखी जानी चाहिए और रोगी की लिखित सहमति के बगैर उसे उजागर नहीं किया जाना चाहिए। इसी तरह से कोई तस्वीर अथवा रोगियों की वीडियोग्राफी लिखित अनुमति के बाद ही ली जानी चाहिए, तथापि परिचय गुप्त रखने की हर संभव कोशिश की जानी चाहिए।

ड. **चिकित्सक बदलने का अधिकार** - बिना कोई कारण बताए रोगी किसी भी अवस्था में अपना चिकित्सक बदल सकता/सकती है लेकिन चिकित्सक बदलने के बाद संबंध समाप्त होने के पश्चात पहले वाला चिकित्सक किसी भी प्रकार की लापरवाही के लिए जिम्मेवार नहीं होगा।

च. **शिकायत निवारण का अधिकार** - डॉक्टर/अस्पताल के विरुद्ध किसी भी शिकायत के लिए रोगी को न्याय अदालत/परिषद/भारतीय चिकित्सा परिषद से संपर्क स्थापित करने का मौलिक अधिकार है।

1.4.2 रोगी के कर्त्तव्य

जब डाक्टर का रोगी के प्रति कर्त्तव्य है, वहीं रोगी से भी उम्मीद की जाती है कि वह अपना आचरण इस प्रकार का रखे कि संबंध एक पक्षीय नहीं हो। रोगी के कर्त्तव्य के बारे में मुख्य मार्गनिर्देश निम्नानसार हैं

क. चिकित्सक से परामर्श लेते समय रोगी को रोग कैसे हुआ, अभी तक उसकी प्रगति है, अब तक की जांच से क्या पता चला है, इत्यादि, संबंधी जानकारी छिपानी नहीं चाहिए।

ख. उसे सावधानी, दवा लेने इत्यादि के मामले में चिकित्सक का पूरा सहयोग करना चाहिए और नियमित रुप से चिकित्सक की सलाह माननी चाहिए।

ग. चिकित्सक की जानकारी के बगैर महिला/पुरुष को किसी दूसरे चिकित्सक से सहमति/परामर्श नहीं लेना चाहिए भले ही वह संबंधित रोग विशेषज्ञ क्यों न हो।

घ. स्त्री/पुरुष रोगी यदि पहले बताया गया हो और परामर्शशुल्क के बारे में सहमति हो गई हो तो परामर्श लेते समय अथवा उससे पूर्व इसका भुगतान कर देना चाहिए।

ड. स्त्री/पुरुष रोगी को चिकित्सीय दृष्टि से कोई लापरवाही नहीं बरतनी चाहिए।

च. यदि बार-बार चेतावनी देने पर चिकित्सक पाता है कि रोगी को बकाया शुल्क भुगतान करने की कोई इच्छा नहीं है और वह बार-बार परामर्श करके संबंध बनाए रखने पर जोर देता/देती है तब चिकित्सक अपने अधिकारों की सीमा के भीतर इस आशय की पर्याप्त सूचना देकर संपर्क बंद कर सकता है।

1.4.3 चिकित्सक के अधिकार

जिस तरह रोगी के कुछ अधिकार हैं उसी तरह चिकित्सकों को भी कुछ अधिकार प्राप्त हैं जो इस प्रकार हैं।

क. अपनी पंसद से रोगियों के चयन का अधिकारः

यद्यपि मेडिकल प्रैक्टिशनर को अपने रोगियों को चुनने का मौलिक अधिकार है लेकिन आपातकालिक स्थिति, सामूहि संकट, दुर्घटना इत्यादि के दौरान इस अधिकार में कमी कर दी गई है/रोक लगा दी गई है। सरकारी क्षेत्र के, चिकित्सक राज्य का प्रतिनिधित्व करते हैं और अपने पास आनेवाले रोगियों की चिकित्सीय देख-रेख करने के लिए कर्त्तव्य से बंधे होते हैं।

ख. व्यावसायिक शुल्क प्रभारित करने का अधिकार

प्रत्येक मेडिकल प्रैक्टिशनर को अध्यावसायिक शुल्क मांगने का विधिक अधिकार है, लेकिन रोगी को इस बारे में पहले बताया जाना चाहिए। सरकारी सेवा में नियमित चिकित्सक को

सामान्यतया शुल्क मांगने की अनुमति नहीं है और इसकी भरपाई नॉन-प्रैक्टिसिंग भत्ते के रुप में की जाती है।

ग. संविदा समाप्त करने का अधिकार

यदि वह देखता/देखती है कि रोगी उनकी सलाह भली-भाँति नहीं मान रहा है अथवा उससे बिना परामर्श किए ही अन्य चिकित्सक की परामर्श ले रहा है तो चिकित्सक को संपर्क समाप्त करने का अधिकार है। ऐसी स्थिति में, उसे रोगी को अग्रिम सूचना देनी चाहिए, जिसमें इसका उल्लेख किया जाना चाहिए कि संबंध समाप्त किया जा रहा है और जब तक दूसरा चिकित्सक यह केस नहीं ले लेता तब तक रोगी का इलाज करते रहना चाहिए।

1.4.4. चिकित्सक के कर्त्तव्य

जब कभी भी कोई चिकित्सक किसी रोगी को अपने संपर्क में लेता है। उसके ऊपर निम्नलिखित दायित्व आ जाता हैः

क. पर्याप्ततः उचित दक्षता और घ्यान से रोगी की देखभाल करना।

ख. पर्याप्त दक्षता संसाधनों की कमी ख्याल नहीं रखने की वजह से, यदि रोगी की मृत्यु हो जाती है तो उस महिला/पुरुष चिकित्सक के ऊपर मुकदमा चलाया जाता है।

ग. उसे उतनी संख्या में नर्स/रोगी स्वीकार करने चाहिए जितने वह हैंडल कर सकता है तथा इस प्रकार से समुचित देखभाल एवं इलाज हो सके तथा समझौता न करना पडे।

घ. पहले जितने शुल्क पर सहमति हुई हो उतने ही शुल्क की मांग करनी चाहिए।

1.5 सहमति

सहमति की परिभाषा ष्करारनामें ष भावनात्मक राय, कार्य इत्यादि के रुप में दी जाती है। सहमति का स्वरुप जरुरत के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है और इसे प्राप्त करने में विफल रहने पर, चिकित्सक के विरुद्ध अभियोजन चलाया जा सकता है।

सहमति स्पष्ट या अंतनिर्हित अथवा मौखिक या लिखित हो सकती है।

i. **अंतर्निहित सहमतिः** जब स्वतंत्र रुप से सहमति दी जाती है तब इसे व्यक्त करने अथवा इस पर जोर डालने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। इसमें कृत्य और आचरण द्वारा दी

गई सहमति और अनुमानित सहमति दिया जाना शामिल है हालांकि अनुमानित सहमति कभी नहीं दी गई है। इस प्रकार, यह किसी मामले की परिस्थिति पर आधारित तथ्य से जुड़ा प्रश्न है। सामान्यतः ऐसा माना जाता है कि जब कोई व्यक्ति किसी चिकित्सक के पास पहुँचता है, उस महिला/पुरुष चिकित्सक की उसकी शारीरिक जाँच करने के बारे में अन्यांतरिक सहमति होती है जो सामान्यतः निरीक्षण, धड़कन जांच, प्रीकशन (precussion) और ऑस्कल्टेशन (auscultation) तक परिमित होता है। रेक्टम संबंधी अथवा योनि की जांच हेतु अभिव्यक्त अनुमति आवश्यक है।

ii. **व्यक्त सहमति/अनौपचारिक सहमति** -यह साक्षी की उपस्थिति में मौखिक रुप से व्यक्त सहमति है (और बाद वाले न्यायालय की जांच में अभिसाक्ष्य द्वारा इसे सिद्ध करने की जरुरत है) अथवा यह लिखित रुप में हो सकती है, जब स्पष्ट रुप से इसका भी उल्लेख होना चाहिए कि कौन किसे अपनी सहमति दे रहा है और किस प्रयोजनार्थ दे रहा है, यह भी स्पष्ट किया जाता है कि उसे बिना किसी दबाव के और कार्य को भली-भाँति समझबूझ कर स्वैच्छिक रुप से दिया जा रहा है, मामला जांच के लिए मौखिक सहमति ही पर्याप्त है। शल्य चिकित्सा में यह संगत है अथवा डाक्टर द्वारा किए गए इसी तरह के कार्यकलापों में यह उपयुक्त है, जिसमें सभी प्रकार की सावधानी के बाबजूद भी कुछ न कुछ जोखिम रहता है।

iii. **सूचित सहमति** - रोगियों को प्रदत्त सूचना के अधिकार के आधार पर यह अपेक्षाकृत नई संकल्पना है जिसके अंतर्गत वह जान सकता है कि उसे क्या रोग है, किस तरह निदान किया गया है और उसका क्या इलाज करने की योजना है, क्या इच्छाएं अन्तर्ग्रस्त है और क्या कोई वैकल्पिक इलाज उपलब्ध है।

चिकित्सक रोगी की भाषा में सभी बातें विस्तार से बताता है और निष्पक्ष अभिसाक्षी के साथ-साथ रोगी/परिचर का हस्ताक्षर लिया जाना चाहिए। अंत में, चिकित्सक को इस पर प्रति हस्ताक्षर करना चाहिए।

1.5.1 सहमति के विधिक पहलू

क. **आपराधिक आशंकाएं और सहमति** - भा.द.सं. की धारा 87 में उल्लेख किया गया है कि यदि कर्त्ता इस बात से अनभिज्ञ है कि इससे मृत्यु हो जाएगी अथवा गंभीर क्षति होगी। यदि घायल व्यक्ति की सहमति से ऐसा किया गया हो और घायल व्यक्ति 18 वर्ष की आयु से अधिक का हो, भले ही सहमति व्यक्त हो अथवा उस क्षति से पीड़ित होने की समझ हो तो ऐसी स्थिति में कोई अपराध नहीं माना जाएगा।

इस धारा में सहमति देने वाले की आयु 18 वर्ष होने का विशेष रुप से उल्लेख किया गया है इसमें भारतीय वयस्कता अधिनियम, 1875 के तहत वयस्क होने की आयु का ध्यान रखा गया है। नर संहार से परिभाषित करने के लिए इस आश्य के पद का प्रयोग किया गया है (धारा 299), स्वैच्छिक रुप से चोट पहुँचाना (321) और स्वैच्छिक तौर पर गंभीर चोट पहुँचाना (धारा 322) क्षति के कारण पद (धारा 321) से इस कृत्य की पुष्टि होती है, भले ही मृत्यु हो गई हो, यह आशयित अथवा जानबूझ कर नहीं किया गया था, ना ही इसकी कोई आशंका थी। (भारत का दंड विधान - खंड 1 डा. श्री हरि सिंह ग्रोवर (1978) पृष्ठ 672-73)

ख. **धारा 88, भा.दं.सं.** - कोई ऐसा कृत्य जिसका आशय जान से मारने का नहीं था किसी भी प्रकार का चोट पहुंचाना नहीं होगा यदि -

- कर्त्ता का यह आशय नहीं था
- जिस व्यक्ति के लाभार्थ सद्भाव से यह कार्य किया गया हो वह कर्ता का जानने वाला हो।
- और जिसने कृत्य के फलस्वरुप होने वाली आशंका के बारे में लिखित अथवा मौखिक सहमति दे दी है।

यह धारा आगे इस आधार पर नहीं लगती है कि सदभावपूर्वक यहां तक कि रोगी के लाभार्थ मृत्यु का जोखिम लेने पर भी उसकी जानकारी और सहमति से ऐसा किया गया है।

ग. **धारा 89, भा.दं.सं.** में उल्लेख किया गया है कि यदि 17 वर्ष से कम आयु के बच्चे के हितार्थ उसके अभिभावक अथवा उस व्यक्ति के कानूनी अभिरक्षक के मौखिक अथवा लिखित अनुमति से सद्भावपूर्वक कोई कृत्य किया गया हो तो वह अपराध नहीं होगा।

घ. **धारा 90, भा.दं.सं.** में स्पष्ट किया गया है कि भय, ना समझी में की गई सहमति अथवा किसी पागल व्यक्ति अथवा 12 वर्ष से कम आयु के बच्चे द्वारा दी गई सहमति कोई सहमति नहीं है।

ड. धारा 91 में स्पष्ट किया गया है कि यदि कोई ऐसा कृत्य जो अपने आप में अपराध है, जिसमें कोई खतरा होने की आशंका नहीं हो, इसमें भा.दं..सं. की धारा 87, 88 और 89 के तहत किसी प्रकार के बचाव का विधान नहीं है क्योंकि पीड़ित व्यक्ति द्वारा उस अपराध की सहमति की गई थी।

च. धारा 92 में व्यक्ति के हितार्थ उसकी सद्इच्छा से किन्तु उसकी सहमति लिए बगैर किया गया कार्य अपराध नहीं है, यदि

- उस व्यक्ति के लिए सहमति देना असंभव हो; अथवा
- वह सहमति देने में अक्षम हो; अथवा

- सहमति देने के समय कोई भी अभिभावक अथवा उसका कोई विधिक प्रभारी उपलब्ध नहीं हो।

छ. इसी प्रकार धारा 93 के तहत सद्भावपूर्वक किसी व्यक्ति को लिखा गया कोई पत्र आदि जो इसके लाभार्थ हो, अपराध नहीं होगा यदि व्यक्ति को इसकी सूचना मिलने से उसे हानि पहुँचाता है (जेसे यह जानकारी कि उसका जीवन नाजुक है और चिकित्सक द्वारा उसे बताया जाता है कि अगले वर्ष तक उसके जीवित रहने की संभावना नहीं है और उसे दिल का दौरा पड़ जाता है - ऐसी स्थिति में वह चिकित्सक कानून की चपेट में नहीं आएगा क्योंकि उसके मामले के निपटान हेतु रोगी को उसके आग्रह पर स्पष्ट उत्तर दिया गया था)।

1.5.2 पति/पत्नी से सहमति

निम्नांकित प्रक्रिया में पति/पत्नी की सहमति लेना उचित रहता है अर्थात् स्टेरीलाइजेशन, गर्भपात, कृत्रिम तरीके से सीमेन डालना अथवा कोई भी ऐसा कार्य, जिसे लैंगिक अधिकारों पर असर पड़ता हो।

1.5.3 स्थितियां, जब सहमति अपेक्षित नहीं हो

विधि के अनुसार निम्नांकित स्थितियों में किसी प्रकार की सहमति अपेक्षित नहीं हैः

क. जब किसी व्यक्ति को पुलिस द्वारा चिकित्सीय जांच के लिए लाया जाता है यथा शराब के नशे में, हमला, इत्यादि होने पर, यद्यपि ऐसे मामले में बिना सहमति के इलाज नहीं करना चाहिए।

ख. साक्ष्य के लिए अपेक्षित सैम्पल (रक्त, बाल इत्यादि) प्राप्त करने के लिए पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को लाए जाने की स्थिति में।

ग. न्यायालय द्वारा चिकित्सीय जांच के लिए भेजे गए व्यक्तियों के मामले में, किसी प्रकार की सहमति अपेक्षित नहीं है।

घ. यदि चिकित्सीय जांच सांविधिक अपेक्षा हो तो किसी प्रकार की सहमति अपेक्षित नहीं है यथा सशस्त्र सेना, इत्यादि।

1.6 न्यायालय में चिकित्सा अधिकारी के कर्त्तव्य

1. **सम्मनः** जब कभी भी चिकित्सकों को विधि न्यायालय में साक्ष्य देना होता है, उन्हें सबपोइना/सम्मन भेजा जाता है, यह ऐसा दस्तावेज है, जिससे किसी शास्ति के तहत की न्यायालय में उपस्थिति बाध्यकारी होती है।

किसी नियत तारीख और समय में अभिसाक्षी की न्यायालय में उपस्थित होने संबंधी सम्मन न्यायालय के पीठासीन पदाधिकारी की मुहर व हस्ताक्षर से जारी किया जाता है अथवा किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा भी उसकी दूसरी प्रति जारी की जा सकती है, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा प्राधिकृत किया गया हो। उन्हें पुलिस अधिकारी अथवा न्यायालय के अधिकारी अथवा राज्य में यथा प्राधिकृत किसी दूसरे लोक सेवक द्वारा जहां संभव हो व्यक्तिगत रुप में जारी किया जाता है, इसकी प्राप्ति के प्रमाण के रुप में उसकी दूसरी प्रति पर प्राप्त करने वाले का हस्ताक्षर लिया जाता है, जिसे सम्मन जारी करने वाले न्यायालय में सम्मन पहुँचाए जाने के सबूत के तौर पर वापिस कर दिया जाता है। उपर्युक्त के अलावा, उन्हें निबंधित डाक द्वारा भी भेजा जा सकता है जिसकी दूसरी प्रति प्राप्ति रसीद सहित जारी करने वाले न्यायालय को भेजा जाना चाहिए।

सरकारी सेवकों के लिए, प्रक्रिया यह है कि साधारणतया (धारा 66) सम्मन कार्यालय प्रधान को भेजा जाना चाहिए, जब अधिसाक्षी सरकारी सेवा में पदासीन हो, सामान्यतया अस्पताल के चिकित्सा अधीक्षक को भेजा जाता है, जो प्राप्ति रसीद की दूसरी प्रति को पृष्ठांकित करेगा साथ ही यह प्रमाणित करता है कि यह बुलाए गए सरकारी सेवक पर प्रक्रमित किया जाएगा। इस प्रकार, यह देखने का दायित्व कार्यालय प्रधान का होता है कि यदि सेवारत अधिकारी किसी दूसरे जगह तैनात किया जाता है अथवा किसी दूसरी जगह उसकी प्रतिनियुक्ति इत्यादि की जाती है तो ऐसे सम्मन प्र ाप्त करने के बाद न्यायालयी सम्मन के अनुपालन नहीं होने के लिए उसे ही जिम्मेदार ठहराया जाएगा।

चिकित्सा अभिलेख अनुभाग को न्यायालयों में बड़े अस्पताल में होने वाली सुनवाई की तारीखों के साथ-साथ विभिन्न चिकित्सा अधिकारियों के बारे में पूरी जानकारी भी रखनी चाहिए (जब तक कि चिकित्सा अधिकारी के वैयक्तिक कर्मचारी अर्थात वैयक्तिक सहायक/निजी सचिव इस कार्य के लिए तैयार नहीं होते हैं। वे प्रत्येक तारीख के लिए विभिन्न श्रेणी के न्यायालयों से प्राप्त विभिन्न सम्मनों का रिकार्ड रख सकते हैं, और उच्चतर न्यायालय जैसे- मैक्ट (मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण सिविल) के मजिस्ट्रेट कोर्ट से अधिक सत्र न्यायालय को अधिक महत्व देना चाहिए और यदि समान रैंक के न्यायालयों से दोनों सम्मन आते हैं तो पहले प्राप्त सम्मन को प्राथमिकता दी जानी चाहिए और दूसरे को वापिस कर देना चाहिए, जिस पर चिकित्सा अधिकारी अथवा अभिलेख कक्ष के प्रभारी के हस्ताक्षर होने चाहिए और स्पष्टतः उल्लेख होना चाहिए कि किन कारणों से हाजिरी नहीं दी जा रही है जैसे सत्रों में व्यस्तता/अन्य सत्र/अन्य एम.एम. न्यायालय इत्यादि अथवा छुट्टी पर/स्टेशन से बाहर, इत्यादि इन सभी बातों की सूचना सुनवाई की तारीख से पहले मूल बुलावा पत्र (सम्मन) के साथ दी जानी चाहिए।

i. **आचार धन** - उच्च न्यायालय के नियमों के अनुसार, कोई सरकारी सेवक सि वल मामले में न्यायालय में उपस्थित होते समय सम्मन दिए जाने पर ड्यूटी पर समझा जाता है और इस तरह भुगतान किए गए यात्रा-व्यय को ष्कन्डक्ट मनी ष कहा जाता है, जबकि आपराधिक मामले में विभाग के नियम के अनुसार यात्रा-व्यय का भुगतान किया जाता है। न्यायालय के पास अभिसाक्षी को भी व्यय का भुगतान करने की शक्ति है (यदि

उन्हें विभाग द्वारा भुगतान नहीं किया जाता है) और विविध प्रकार के चिकित्सीय विधिक कार्य हेतु विभिन्न श्रेणियों के सरकारी सेवकों को राशि के भुगतान के बारे में नियम बनाए गए हैं।

ii. **अभिसाक्षी की बाध्यकारी उपस्थिति हेतु वारंट** - यदि कोई चिकित्सीय अभिसाक्षी, जिसे समय रहते पहले ही सम्मन दिया गया था, न्यायालय में उपस्थित नहीं हुआ और इस संबंध में उसके पास कोई पर्याप्त दलील नहीं थी, तब न्यायालय (सम्मन के अलावा) आपराधिक दंड संहिता की धारा 87 के तहत उसकी गिरफ्तारी का वारंट जारी कर सकता है, जिसमें विनिर्दिष्ट तारीख को न्यायालय में उसकी उपस्थिति बाध्यकारी थी। यद्यपि न्यायालय एक अथवा एक से अधिक पुलिस अधिकारियों को (जिनके नामों का उल्लेख गिरफ्तारी वारंट पर हो आपराधिक दंड संहिता की धारा 72) अथवा इसके बदले में दूसरे पुलिस अधिकारी का नाम भी वारंट का काम करने हेतु पृष्ठांकित कर सकते हैं, जिनका नाम वारंट पर पृष्ठांकित किया गया हो (आपराधिक दंड संहिता की धारा 74) पुलिस अधिकारी को वारंट की अन्तर्वस्तु की अधिसूचना देकर (धारा 75 के तहत) 24 घंटे के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को हाजिर करना होता है।

ऊपर विनिर्दिष्ट तरीके से, वारंट जारी करने वाला कोई न्यायालय अपने विवेक से वारंट पर पृष्ठाकंन कर सकता है। यदि ऐसा कोई व्यक्ति पर्याप्त जमानती राशि से कोई बांड बनाकर देता है कि वह निर्धारित तारीख और समय में न्यायालय में हाजिर हो जाएगा, तब ऐसे व्यक्ति को हिरासत से मुक्त किया जा सकता है। पृष्ठाकंन में रकम का विवरण होना चाहिए। इस संबंध में गिरफ्तार व्यक्ति और उसके जमानती क्रमशः आबद्ध होंगे। अपेक्षित प्रतिभूतियों/जमानतों की संख्या, और न्यायालय में हाजिरी का समय आदि भी उल्लिखित होगा। पुलिस अधिकारी यह बाँड न्यायालय में भेजेगा।

तथापि सरकारी चिकित्सा अधिकारियों के मामले में, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने अधीनस्थ न्यायालयों को संपर्क किया है कि लोक सेवा में कार्यरत व्यक्ति के विरुद्ध गिरफ्तारी वारंट तब तक जारी न किया जाए जब तक कि न्यायालय इस बात से पूर्णतः संतुष्ट नहीं हो जाता है कि जानबूझकर सम्मन के प्रक्रमण का अनुपालन नहीं किया गया है। न्यायालय द्वारा छोड़े जाने के समय से पहले न्यायालय से नहीं चला गया हो। इतना ही नहीं, सिविल प्रक्रिया संहिता के नियम/आदेश सं. 26 के अनुसार, बीमारी, रुग्णता, कमजोरी के कारण अथवा सरकार का सिविल अधिकारी होने के कारण (आदेश सं.26 नियम 4) उसकी लोक सेवा में अवरोध होगा तो ऐसी स्थिति में उसे क्षमा किया जा सकता है। वे इस आशय का नोटिस फाइल करते हैं कि उन्हें स्वयं उपस्थित होना है और बताना है कि उन्हें 100 रुपये तक के जुर्माना सहित आपराधिक दण्ड संहिता की धारा 350 के तहत दण्ड क्यों न दिया जाए अथवा आदेश संख्या 16 (दिल्ली उच्च न्यायालय का खंड 1) के तहत दण्ड के प्रावधानों के तहत दंडित क्यों नहीं किया जाए और उसके वरिष्ठ अधिकारी का ध्यान इस ओर दिलाया जाता है कि उसके अधीनस्थ अधिकारी का आचरण अधिकांश मामले में संतोषजनक है। उन्होंने यह भी अनुदेश दिया है कि सरकारी सेवक और चिकित्सकों के साथ शीघ्रता से 10 मिनट के भीतर ही मामला निपटाया जाए, न्यायालयों को सामामन्यतया चिकित्सा अधिकारियों को 10 बजे

दिन में उपस्थित होने के लिए नहीं कहा जाना चाहिए और उन्हें 12 बजे दोपहर से 2 बजे अपराह्न तक उपस्थित होने के लिए कहा जाना चाहिए। दिल्ली उच्च न्यायालय के आदेश पर बहुत से न्यायालय चिकित्सकों को 2 बजे से 4 बते के बीच बुलाते हैं।

iv. न्यायालय में साक्ष्यः न्यायालय में आने के बाद चिकित्सक को रजिस्ट्रार/रीडर के पास जाना चाहिए जो उनके साक्ष्य की व्यवस्था करता है। कटघरे में बुलाए जाने और स्वयं का परिचय देने के बाद, उसे शपथ दिलाई जाती है और तब उसे बुलानेवाले पक्ष (मुख्य पूछताछ करनेवाले)द्वारा बुलाया जाता है। तब उस पक्ष के वकील द्वारा पूछे जाने पर चिकित्सक प्रथम पुरुष में ज्ञात तथ्यों की जानकारी देता है। किसी साक्ष्य या इसके बाद प्रतिपक्ष के वकील द्वारा प्रतिजांच होती है। गवाह दस्ता वेज, नोट आदि की प्रति का हवाला देकर अपनी स्मृति ताजी कर सकता है। यदि आवश्यक हो तो बुलानेवाले पक्ष द्वारा पुनः जांच के बाद प्रति जांच की जा सकती है। अंत में, यदि वांछित हो, तो न्यायालय (न्यायाधीश) किसी भी संदेहयुक्त प्वाइन्ट का समाधान करने के लिए प्रश्न पूछ सकता है।

v. बातचीत की सुविधा और व्यावसायिक गोपनीयता

साधारणतया, रोगी और डाक्टर के बीच किसी भी प्रकार के संवाद का आदान-प्रदान जेनेवा कोड ऑफ एथिक्स और हिप्पोक्रेटिक शपथ से शासित होता है, जिस का खुलासा व्यक्ति के पति/पत्नी अथवा माता-पिता को भी संबंधित पुरुष/महिला रोगी की सहमति के बगैर तब तक नहीं किया जा सकता है, जब तक कि समुदाय का सामुहिक हित अथवा समुदाय का एक बड़ा हिस्सा जोखिम में नहीं हो। जहां तक न्यायालयों का संबंध है, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 126 के वल मुवकिल और उसके बैरिस्टर/एटोर्नी/वकील के बीच संवाद के आदान-प्रदान की सुरक्षा देता है और यह कि किसी भी समय में, ऊपर सूचीबद्ध रुप में नियोजन के दौरान तब तक खुलासा नहीं किया जा सकता है जब तक कि यह सूचना किसी गैर कानूनी प्रयोजन से संबंधित नहीं हो, अथवा उसके नियोजन के समय से ही धोखाधड़ी अथवा अपराध किया गया हो। नियोजन समाप्त होने के बाद भी यह देयता बनी रहती है (भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 126) और विधिक सलाहकार (भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 129) के मामले में भी प्रावधान लागू है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 154 के तहत न्यायालय अपने विवेक से उस व्यक्ति को रोक सकता है जो किसी अभिसाक्षी को बुलाता है, उससे प्रश्न पूछता है, जिससे प्रतिपक्ष द्वारा पूछताछ की जा सकती है।

कानून के तहत चिकित्सा सेवा से संबंद्ध व्यक्तियों के बचाव हेतु ऐसा कोई प्रावधन नहीं है। तथापि चिकित्सक अपने रोगी की किसी भी प्रकार की गोपनीयता को तब तक सार्वजनिक न करने के लिए बंधा हुआ है, जब तक कि न्यायालय द्वारा ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं किया जाए। न्यायालय द्वारा ऐसा करने के लिए बाध्य किए जाने पर इस आशय का विरोध दर्ज करते हुए उसे ऐसा करना चाहिए।

जांच बिन्दु

1. न्यायालय द्वारा डा. को सम्मन देने की प्रक्रिया की चर्चा करें और वर्णन करें कि यदि डा. को दूसरे कोर्ट द्वारा बुलाया जाए तो उसे क्या करना चाहिए।
2. मुख्य परीक्षण और प्रति-परीक्षण के बीच क्या अन्तर है?
3. क्या कानून डाक्टर का किसी व्यक्ति से संबंधित जानकारी का खुलासा उसे निकट संबंधियों अथवा मित्रों के सामने करने से मना करता है, और यदि हाँ तो कहाँ तक?

1.7 अस्पतालों से संबद्ध कानून

1.7.1 जन्म एवं मृत्यु पंजीकरण

इस अधिनियम में नगरपालिका/नागरिक प्राधिकरण (चिकित्सीय और अर्धचिकित्सीय स्टाफ सहित) के सभी कर्मचारियों से अपेक्षा की जाती है कि अपने क्षेत्र में हुए जन्म अथवा मृत्यु की तत्काल सूचना दें। इसके अलावा जिसके परिवार में जन्म या मृत्यु होती है, उसे अनिवार्यतः विहित फार्म भरकर उसके साथ संबंधित दस्तावेज संलग्न करके संबंधित प्राधिकरण में प्रस्तुत करना होता है। कानून में किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर सात दिन और जन्म होने पर 14 दिन की समय सीमा निर्धारित की गई है। फार्म जमा किए जाने के बाद इसी आधार पर बाद में संबंधित नागरिक एजेंसियों द्वारा वृहत् जन्म अथवा मृत्यु प्रमाण पत्र जारी किया जाता है।

मृत्यु का कारण प्रमाणित करते समय चिकित्सा अधिकारियों को सुनिश्चित करना चाहिए कि उस महिला/पुरुष चिकित्सक ने कुछ ही दिन पहले उपचार की अंतिम अवस्थाओं पर रोगी का इलाज किया है और स्वाभाविक मृत्यु हुई है या नहीं। हालांकि, यह अपेक्षित है कि किसी भी तरह की गड़बड़ी का संदेह होने पर, मृत्यु प्रमाण पत्र जारी न करें। विश्व स्वास्थ्य संगठन के दिशानिर्देश् तथा अर्न्तराष्ट्रीय रोग वर्गीकरण (आई.सी.डी.) द्वारा निर्धारित मृत्यु प्रमाणपत्र का मॉडल प्रारुप अपनाना चाहिए। इसमें मृत्यु के तात्कालिक कारण और जिन परिस्थितियों की वजह से मृत्यु अथवा अप्रत्यक्ष कारकों का भी उल्लेख करना चाहिए।

1.7.2 अपकृत्य (Tort) संबंधी विधि

अपकृत्य संबंधी कानून दुर्घटनाओं के मुआवजे का कानून है, जिसमें किसी व्यक्ति अथवा संपति के खंडों की क्षति का उल्लेख है। विधिक शब्दकोष में ष्टॉर्ट ष की परिभाषा निजी अथवा सिविल त्रुटि अथवा चोट के रुप में की गई है जिसके लिए क्षति की कार्यवाही के तौर पर न्यायालय समाधान उपलब्ध कराएगा।

ष टॉर्ट ष अप्रत्यय कानून है जो सिविल फैसले पर आधारित है, यह वर्षों से सामान्य विधि पोपरा के रुप में जाना जाता है जिसमें विभिन्न परिस्थितियों में देयताओं एवं मुआवजे का निर्वचन किया गया है। वर्षों से फैसले पर विवादास्पद मामले में प्रति संदर्भ दिया जाता है जिसे अधिनियमित कानून के समतुल्य होने की संस्वीकृति दी गई।

i. अपकृत्य मामले में मार्गदर्शी सिद्धान्त

सामान्य कानून में ऐसा उल्लेख किया गया है कि मुकदमा दायर करने वाले किसी वादी अथ वा घायल अथवा पीड़ित पक्ष को मुआवजे का अथवा बनाने के लिए घायल करनेवाले व्यक्ति (व्यक्तियों) के मामले में चार तत्वों को सिद्ध करना होगा। रोग परवर्ती व्यक्ति को टॉर्टफीसर कहा जाता है।

क. यह कि (अपकृत्य कर्ता) (टॉर्टफीसर) और वादी के बीच अनुबंध अथवा करार या संविदा थी जिसके तहत चिकित्सक द्वारा वादी का इलाज किया गया था।

ख. यह कि चिकित्सक मानक इलाज करने में विफल रहा अर्थात् उक्त ड्यूटी करने में विफलता अथवा लापरवाही बरती गई।

ग. यह कि वस्तुतः क्षति पहुंची थी; और

घ. यह कि इलाज करने में विफलता एवं घायल होने के बीच कोई संबंध था - इसे आसन्न कारण कहा जाता है। यहां प्रयुक्त चोट/हानि/क्षति का प्रयोग भारतीय दंड संहिता की धारा 44 में यथापरिभाषित विधिक अर्थ में किया गया है और इसके ऊपर केवल शरीर अथवा संपति से ही संबंधित है।

इस प्रकार,संविदा अथवा सहमति में विधि द्वारा अध्यारोपित ड्यूटी आती है और चिकित्सक द्वारा इसका उल्लंघन किया गया है। लापरवाही को आसन्न कारण से जोड़ा जाना चाहिए जिसके बगैर क्षति नहीं होती।

चिकित्सीय दुष्प्रयोग (जिसे सिविल दुष्प्रयोग) मुकदमा भी कहा जाता है, में सबसे पहला प्र ाश्न देखभाल के मानक का है। भारतीय चिकित्सा परिषद की नीति-संहिता के अनुसार चिकित्सकों की यह ड्यूटी है कि मानक के अनुरुप उचित देखभाल करे। रोगी यह सोचकर दावा करते हैं कि चिकित्सकों ने अपने कर्त्तव्य का उल्लंघन किया है।

न्यायालय चिकित्सकों को स्वयं यह मानक निर्धारित करने के लिए कहती है। इस तरह ऐसे मुकदमें में, वादी को विशेषज्ञ का प्रमाणपत्र देना चाहिए कि इलाज का स्तर पूरा नहीं था, इसलिए चिकित्सक लापरवाह था अर्थात् वह महिला/पुरुष चिकित्सक इलाज के कतिपय स्तर को पूरा करने के मामले में विफल रहा। इसका तात्पर्य जानबूझकर, घृणित कार्य करना नहीं है जो 323 से लेकर 338 तक की धारा के तहत आता और यहां तक कि भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के तहत आता है।

ii. अपकृत्य के मामले में चिकित्सक का बचावः

घायल होने के क्रम में चिकित्सीय लापरवाही की अवधारणा लगभग 4000 वर्षों से चली आ रही है। मिश्रवासियों ने चिकित्सक के दायित्व की कठोरता को यह कहकर कम कर दिया कि जब तक महिला/पुरुष चिकित्सक किसी रोग के इलाज के लिए सिद्ध या प्रमाणित पद्धति का पालन करता है, वह अवांछित परिणाम से मुक्त रहेगा। अन्य आधुनिक अवधारणाओं की ही तरह रोम वासियों ने किसी प्रकार की गलती के बिना किसी डाक्टर को किसी भी तरह के अपराध के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया।

आज, मूक सहमति ने कुछ हद तक तस्वीर बदल दी है किन्तु बहुत से मुकदमे और वाद-विवाद में इसे सिद्ध करना कठिन हो गया है, विशेषकर यदि कोई दूसरा पक्ष इसके होने को अस्वीकार करता है अर्थात् जोखिम, जिसके तहत मृत्यु हुई और चिकित्सक द्वारा गलत तथ्य दिए जाने के कारण परिणाम सामने आया, इससे चिकित्सक को लाभ मिल जाता है। इसे रोकने के उद्देश्य से भारतीय दंड संहिता की धारा 87 और 89 के आलोक में, रोगी अथवा उसके अभिभावक से स्पष्ट रुप से लिखित सहमति ली जाती है, जिसमें अपनाई जानेवाली प्रक्रियाओं का उल्लेख किया जाता है। इसके अलावा, जैसा कि 11.1.7 धारा में उल्लेख है, निष्पक्ष व्यक्ति (अभिसाक्षी) का भी हस्ताक्षर लिया जाता है।

अपकृत्य के मामले में, चिकित्सक का बचाव अनेक आधारों पर टिका हो सकता है, जिसकी व्याख्या नीचे दी गई हैः

क. अपकृत्य (टॉर्ट) कार्यवाही के विभिन्न सिद्धान्तों से बचाव

i. यह कि रोगी और चिकित्सक के बीच कोई समझौता करार नहीं था और इस प्रकार इलाज के उचित मानक अपनाए जाने की कोई ड्यूटी नहीं बनती है। कभी-कभी इसे अस्वीकार करना कठिन हो जाता है क्योंकि सामान्यतः अधिकांश स्थितियों में यह तथ्य कि रोगी को अस्पताल में भर्ती कराया गया था और उसका विहित इलाज किया गया अथवा वह वहां अस्पताल में रहा इसीसे सहमति परलक्षित होती है, इसलिए समझौता करार हुआ।

ii. यह कि अपकृत्यकर्ता ने उस मामले में इलाज के लिए अपेक्षित मानक अपनाया। यह इस पर आधारित है कि क्या किया गया था और ऐसे मामले में दवा के मानक प्रयोग और वृत्ति के अन्य विशेषज्ञों के अनुसार किया जाना अपेक्षित था। रोगी की तरफ से लापरवाही होने पर बचाव के अतिरिक्त आधार सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

iii. यह कि इलाज के दौरान वास्तव में कोई क्षति नहीं हुई। अद्यतन उपलब्ध जानकारी और अनुभव के अनुसार, इसे डाक्टर के इलाज जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है।

iv. अंततः यदि कोई आसन्न कारण नहीं हो, अर्थात् इलाज के मानक और क्षति के बीच कोई दृष्टव्य संबंध नहीं हो।

ख. अंशदायी लापरवाही

अपने विरुद्ध लापरवाही के मामले में चिकित्सक यह दलील देता है कि रोगी की वजह से भी लापरवाही हुई और यह कि शल्यचिकित्सा के वक्त यदि रोगी यथानुदेशित चेतावनी मान जाता तो ऐसी समस्याएं उत्पन्न नहीं होती।

इसे सिद्ध करने के लिए, चिकित्सक के पास अपना बचाव पक्ष देने के लिए कोई न कोई दृष्टव्य घटना अवश्य होनी चाहिए। यहां डाक्टर की लापरवाही को इस तरह से बताया जाता है कि ऐसा मुख्यतः वादी के अवांछित कार्यकलापों के कारण हुआ था। जिसकी वजह से अपंगता/मृत्यु हुई। हालांकि चिकित्सक अपने आपको इस दोषारोपण से पूर्णतः मुक्त नहीं कर सकता है।

अंशदायी लापरवाही को आपराधिक लापरवाही के आरोप जैसे धारा 338/304 के तहत अदालती मामले में नहीं माना जाता है किन्तु वैयक्तिक चूक के मामलों में यह विधिमान्य बचाव का तरीका और वादी को मुआवजा दिए जाने संबंधी वैयक्तिक फैसला करते समय इस पक्ष पर विचार किया जाता है।

ग. सूचित सहमति

ऐसे मामले में चिकित्सक द्वारा प्रस्तुत किया जानेवाला दूसरा बचाव पक्ष यह है कि ऐसे संभावित दुष्परिणामों के बारे में वादी को बता दिया गया था, चिकित्सक के इलाज में ऐसे दुष्परिणामों के नहीं होने के बारे में कोई गारंटी नहीं दी गई थी और रोगी ने इसे स्वेच्छा से स्वीकार किया था।

घ. उत्तरदायित्व

वेब्सटर के शब्दकोष में ष विकोरियस ष की परिभाषा किसी दूसरे व्यक्ति के बदले किया गया और प्राप्त अथवा पीड़ित होना। इस प्रकार, प्रत्यायुक्त अथवा स्थानापन्न उत्तरदायित्व ऐसा दायित्व है जो मूल व्यक्ति पर तय किया जाता है। सामान्य अर्थ में, ष कोई भी मालिक नियोजन के दौरान किसी सेवक द्वारा उसकी सुपरिभाषित ड्यूटियों के तहत किए गए कृत्य के लिए उत्तरदायी है। ष

इस प्रकार, कोई भी चिकित्सा अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मियों पर लगे लापरवाही के आरोप के लिए तब तक उत्तरदायी ठहराया जाएगा जब तक कि दूसरा व्यक्ति उस कार्य के निष्पादन हेतु सु-प्रशिक्षित और पर्याप्ततः अनुभवी नहीं हो।

हालांकि, प्रशासन का कोई भी वरिष्ठ अधिकारी किसी ऐसे कनिष्ठ अधिकारी के कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है जो स्वतंत्र ढंग से ऐसा करने में सक्षम हो और उसकी भर्ती/उसका चयन प्रक्रिया में पूर्णतः छानबीन करने के बाद ऐसे कार्यों के निष्पादन के लिए किया गया हो, जिसके आधार पर, कनिष्ठ अधिकारी के ऊपर लापरवाही का आरोप लगाया गया है। हालांकि, यदि इसे बार-बार वरिष्ठ अधिकारी की जानकारी में लाया गया हो कि उसके प्रशासनिक प्रभार के भीतर कार्य करनेवाला व्यक्ति लापरवाह है, और इसके बावजूद उसे कार्य करते रहने की अनुमति दी जाती है, तब वरिष्ठ अधिकारी को अपने कनिष्ठ कर्मी की लापरवाही के लिए स्थानापन्न तौर पर जिम्मेवार ठहराया जाएगा।

ड़. प्रतिवादी का वरिष्ठ

उसके सहायक अथवा अधीनस्थ कर्मियों द्वारा बरती गई लापरवाही का आरोप यदि वादी द्वारा लगाया गया हो, तो वरिष्ठ अधिकारी के पर्यवेक्षण में किए गए सभी कृत्यों के लिए उसे ही जिम्मेवार ठहराया जा सकता है। ऐसा बचाव पक्ष रेजिडेन्ट चिकित्सक अथवा यहां तक कि इर्न्टनशिप वाले चिकित्सक भी दे सकते हैं।

च. दैनिक हस्तक्षेप (नोवस एक्टस इन्टरवेंशन)

इस पद की व्याख्या ईश्वर के नए कृत्य अथवा अज्ञात या अद्रष्टव्य/असंभावित घटनाओं के अचानक घटित होने के रुप में की जाती है, इस आशय की दलील कभी भी शल्य चिकित्सा/इलाज के अप्रत्याशित परिणाम के समय दी जाती है। इस तरह चिकित्सक कहता है कि व्यवहार में ऐसा नहीं था बल्कि भगवान की ऐसी ही मर्जी थी जिसके लिए उसे जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है।

1.7.3 उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम

संविदात्मक संव्यवहार सहित शिकायतों के सुलभ, तीव्र एवं सस्ते निवारण के उद्देश्य से सन् 1986 में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम जारी किया गया और इसके बाद 1987 में इससे संबंधित नियम बनाए गए थे। तत्पश्चात 1993 में उपभोक्ता संरक्षण (संशोधन) अध्यादेश जारी किया गया। इस अधिनियम के माध्यम से सरकार ने उपभोक्ता शिकायतों का समाधन अपने फोरम एवं आयोगों के माध्यम से सुविधाजन व्यावहारिक निःशुल्क एवं त्वरित उपाय सुनिश्चित करने की कोशिश की है।

इस अधिनियम में (अध्याय 3 में) उल्लेख है किः

क. सरकारी अधिसूचना द्वारा राज्य के प्रत्येक जिले में एक जिला फोरम होगा।

ख. प्रत्येक राज्य में सरकारी अधिसूचना के तहत गठित उपभोक्ता विवाद निपटान आयोग, जिसे राज्य आयोग भी कहा जाता है।

ग. केन्द्रीय सरकार की अधिसूचना द्वारा स्थापित राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निपटान आयोग, जिला फोरम और राज्य आयोग केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति से ही अधिसूचित किए जा सकते हैं।

इस अध्याय में आगे जिला फोरम के सदस्यों की पृष्ठभूमि सहित उसकी संरचना का विस्तृत रुप से वर्णन किया गया है वे 5 वर्ष तक अथवा 67 वर्ष की आयु होने तक सेवा कर सकते हैं और उनका पुनर्नियोजन नहीं होगा। राष्ट्रीय आयोग के सदस्यों को पांच वर्ष तक तथा 70 वर्ष की आयु होने तक सेवा करने की अनुमति है तथा 75 वर्ष की आयु होने तक उनका पुनर्नियोजन हो सकता है।

जिला फोरम अथवा राज्य या राष्ट्रीय आयोग के समक्ष निम्नांकित द्वारा शिकायत दर्ज की जा सकती हैः

क. उपभोक्ता (अर्थात् कोई भी व्यक्ति जो किसी वस्तु के बदले किसी तरह से अंशतः अथवा पूणतः रकम का भुगतान करता है, किन्तु ऐसे व्यक्ति नहीं, जो उसकी पुनःबिक्री करने अथ वा व्यावसायिक प्रयोजनों से सामान की खरीद करते हैं अथवा कोई ऐसा व्यक्ति जो पूर्ण, आंशिक अथवा अस्थगित भुगतान के लिए किसी सेवा को भाड़े पर लेता है।);

ख. कम्पनी अधिनियम 1956 के तहत पंजीकृत कोई (स्वैच्छिक) उपभोक्ता एसोसिएशन; अथवा

ग. केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार, यदि वे शिकायत दर्ज करते हैं;

निम्नांकित के संबंध में लिखित शिकायत दर्ज की जानी चाहिएः

क. कोई अनुचित व्यापारिक (ट्रेड) गतिविधि जिसके कारण शिकायतकर्ता को क्षति हुई है अथवा घाटा सहना पड़ा है;

ख. कोई माल जो खराब है ;

ग. ऑफर की गई सेवा जिसमें कमी थी; अथवा

घ. सामान या पैकेज पर उल्लिखित कीमत से अधिक कीमत की वसूली पर

कोई भी उपभोक्ता विवाद तब लागू होता है जब जिसके विरुद्ध शिकायत दर्ज की गई हो या आरोप से मुकर जाता है। इस बारे में विहित नोटिस अथवा किसी प्रकार के अदालती शुल्क की कोई जरुरत नहीं है। (सामान्यतः दीवानी मुकदमें में लाखों का दावा होने पर हजारों में अदालती शुल्क प्रभारित होता है)।

इन फोरम के पास सिविल प्रक्रिया की संहिता 1908 के तहत (धारा 195) दस्तावेज प्रस्तुत करने, शपथ पत्र का साक्ष्य लेने, सम्मन भेजने, पूछताछ करने इत्यादि के मामले में दीवानी न्यायालय को अधिकार है (साथ ही भारतीय दंड संहिता की धारा 193 और 228 और आपराधिक दंड संहिता 1973 का अध्याय 26)।

इन कार्यवाहियों के पश्चात, जिला फोरम इत्यादि आरोप सही पाए जाने के बाद उचित कार्र वाई जैसे-दोष दूर करने/त्रुटिपूर्ण माल बदले जाने/सामान की कीमत प्रतिपूर्ति तथा दूसरे पक्ष की लापरवाही के कारण उपभोक्ता को हुई क्षति की प्रतिपूर्ति का आदेश दे सकता है। ऐसा फैसला फोरम के अध्यक्ष और दो में से एक सदस्य द्वारा दिया जाना चाहिए।

ऐसे जारी किए गए किसी भी फैसले या आदेश की अपील प्रभावित व्यक्ति द्वारा ऐसा आदेश जारी किए जाने से 30 दिन के भीतर राज्य आयोग के समक्ष की जा सकती है। यदि राष्ट्रीय आयोग ने कोई आदेश जारी किया है तब इसके विरुद्ध 30 दिन के भीतर उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है।

इसके आदेश का अनुपालन नहीं करने पर संबंधित व्यक्ति अथवा व्यापारी को न्यूनतम एक महीने और अधिकतम तीन वर्ष तक की सजा और अथवा न्यूनतम 2000 रुपये और अधिकतम 10,000 रुपये तक अर्थदण्ड दिया जा सकता है।

नियम 10 में उल्लेख है कि यदि जांच करनेवाला संबंधित फोरम अथवा आयोग आवश्यक समझे तथा मामले से संबंधित हो, तो वह बही, खाते, दस्तावेज, सामान को भी जमा करने और इसकी जांच का आदेश दे सकता है। यदि इसके पास यह मानने का भी कोई आधार है कि इसे नष्ट किया जा सकता है। बदला जा सकता है या गुप्त रखा जा सकता है तब यह लिखित आदेश द्वारा किसी भी अधिकारी को परिसर में जाकर तलाशी करने तथा यदि जरुरत पड़े तो सामान को जब्त करने का भी आदेश दे सकता है, जिसकी सूचना फोरम या आयोग को 72 घंटे के भीतर दी जानी चाहिए।

नियम 14 के तहत, जब कोई राष्ट्रीय आयोग किसी मामले की सुनवाई कर रहा हो, तब प्र ातिपक्ष की सुनवाई के लिए तारीख देगा। यदि शिकायतकर्ता निर्धारित तारीख को हाजिर नहीं होता है अथवा इसकी ओर से कोई व्यक्ति निर्धारित तरीख को उपस्थित नहीं होता है तो एक पक्षीय निर्णय लिया जा सकता है। नियम 14 के तहत राष्ट्रीय आयोग तीन महीने के भीतर मामले का फैसला करने के लिए बाध्य है। इसके समक्ष अपील किए गए मामले में भी नियम 15 के तहत समतुल्य प्रा वधान लागू होता है। यद्यपि फोरम अथवा आयोग को मामले की सुनवाई के पश्चात् पता चलता है कि मामला झूठा था और तंग करने के लिए किया गया था तो लिखित में रिकार्ड शिकायत खारिज की जा सकती है और शिकायतकर्ता को दूसरे पक्ष को ऐसे व्यय का संदाय करने का आदेश दे सकता है जो यह राशि 10,000 रुपये से अधिक नहीं होगी।

सी.पी.ए. और सरकारी चिकित्सक

जब उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम तैयार होने वाला था तब केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री ने स्पष्ट तौर पर कहा था कि यह चिकित्सा जगत पर लागू नहीं है। इसकी धाराओं की शब्दावली और रचना में साफ-साफ दर्शाया गया है कि इस अधिनियम के निर्माताओं ने यह सुनिश्चित तो नहीं किया था कि इसकी परिधि में चिकित्सा व्यवसाय आएगा। धारा 2 (1) के तहत अपवाद स्वरुप ष निःशुल्क से वा अथवा संविदागत सेवा अथवा वैयक्तिक सेवा ष में सरकारी अस्पतालों और यहां तक कि गैर-सरकारी अस्पतालों और प्रैक्टिशनर्स को भी इसकी परिधि से बिलकुल परे रखा गया था। यद्यपि 1989 में केरल के एक निजी अस्पताल से संबंधित दायर किए गए मामले में राज्य आयोग ने चिकित्सा व्यवसाय को इस अधिनियम की परिधि से बाहर रखे जाने की बात को नामंजूर कर दिया और राष्ट्रीय आयोग ने भी इस फैसले को कायम रखा। न्यायाधीश ने चिकित्सा सेवा को वैयक्तिक सेवा मानने से इन्कार कर दिया। हालांकि, ऐसा अभिमत व्यक्त किया गया कि सरकारी अस्पतालों में इलाज कराने वाले व्यक्तियों को उपभोक्ता नहीं माना जाएगा और इस विचारार्थ उक्त सुविधा को पैसे के बदले प्राप्त सुविधा नहीं माना जाएगा (यह सेवा निःशुल्क दी जाती है) यहाँ, यह नोट करना प्रासंगिक है कि तमिलनाडू राज्य आयोग ने निर्णय लिया था कि यह अधिनियम चिकित्सा व्यवसाय पर लागू नहीं होता है।

13 नवम्बर 1995 को एक महत्वपूर्ण फैसले में (भारतीय मेडिकल एसोसिएशन बनाम वी.पी.शान्ता एवं अन्य के मामले में) उच्चतम न्यायालय ने निर्णय लिया कि भुगतान के बदले चिकित्सा सहायता देना उपभोक्ता संरक्ष्ण अधिनियम की धारा 2(1) (0) में यथा परिभाषित सेवा की परिधि में आता है। इसके फलस्वरुप, कोई पीड़ित रोगी अथवा उसका परिवार डाक्टर को उपभोक्ता अदालत में खड़ाकर मुआवजे की मांग रख सकता है।

माननीय उच्च्तम न्यायालय ने निम्नांकित विनिर्णय दियाः

1. किसी मेडिकल प्रैक्टिसनर द्वारा दी गई सेवा (निःशुल्क सेवा अथवा व्यक्तिगत सेवा को छोड़कर) परामर्श नैदानिक अथवा इलाज के माध्यम से औषधीय अथवा शल्य चिकित्सा के माध्यम से दी गई सेवा इस अधिनियम की धारा 2(1)(06) में यथा परिभाषित सेवा की परिधि में आती है।

2. यह तथ्य है कि मेडिकल प्रैक्टिशनर चिकित्सा व्यवसाय से जुड़ा है और भारतीय चिकित्सा परिषद अधिनियम के तहत गठित भारतीय चिकित्सा परिषद और/अथवा राज्य चिकित्सा परिषद के अन्तर्गत आती है इसलिए यह व्यवसाय उनके अनुशासनिक नियंत्रण के अध्ययधीन है, अतः इनके द्वारा प्रदत सेवा को इस अधिनियम की परिधि से बाहर नहीं रखा जा सकता है।

3. व्यक्तिगत सेवा की संविदा को व्यक्तिगत सेवा हेतु संविदा से अलग किया जाना है। चूंकि मेडिकल प्रैक्टशनर और रोगी के बीच स्वामी और सेवक का संबंध नहीं होता है, अतः किसी

मेडिकल प्रैक्टशनर द्वारा रोगी को प्रदत्त सेवा वैयक्तिक सेवा के तहत नहीं मानी जा सकती है। ऐसी सेवा उस अधिनियम की धारा 2(1)(0) में अन्तर्विष्ट ष सेवा ष की परिभाषा के अप वर्जित खण्ड के तहत आती है।

4. अधिनियम की धारा 2 (1) (0) में ष्वैयक्तिक सेवा की संविदा ष मानक कथन को केवल घरेलु नौकरों के नियोजन हेतु संविदा तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता प्रत्युत उक्त कथन में नियोक्ता को चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराने के प्रयोजनार्थ भी शामिल किया जाएगा। नियोजन की संविदा के तहत चिकित्सा अधिकारी द्वारा दी गई सेवा को इस अधिनियम की धारा 2 (1) (0) में यथा परिभाषित ष सेवा ष की परिधि से बाहर माना जाएगा।

5. इस अधिनियम की धारा 2 (1) (0)में दी गई परिभाषा के अनुसार किसी अस्पताल/नर्सिग होम से संबद्ध मेडिकल प्रैक्टिसनर अथवा किसी अस्पताल /नर्सिग होम में सेवारत चिकित्सा अधिकारी द्वारा प्रदत्त निःशुल्क सेवा को सेवा नहीं माना जाएगा। केवल अस्पताल/नर्सिग होम में पंजीकरण हेतु जमा की गई सांकेतिक राशि के आधार पर इस स्थिति (पोजिशन) में कोई परिवर्तन नहीं आएगा।

6. किसी गैर-सरकारी अस्पताल/नर्सिग होम में प्रदत्त सेवा, जहां किसी भी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता और गरीब एवं अमीर सभी रोगियों को निःशुल्क सेवा दी जाती है उसे भी अधिनियम की धारा 2(1)(0) में दी गई परिभाषा के अनुसार सेवा नहीं मानी जाएगी। पंजीयन के प्रयोजनार्थ सांकेतिक राशि का भुगतान होने पर इस स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होगा।

7. किसी गैर-सरकारी अस्पताल/नर्सिग होम में दी गई सुविधा/की गई सेवा, जहां इनके बदले शुल्क लिया जाता है, ऐसी सेवा अधिनियम के धारा 2(1)(0) में यथा परिभाषित सेवा के तहत आएगी।

8. किसी गैर-सरकारी अस्पताल/नर्सिग होम में दी गई सेवा, जहां भुगतान करने में सक्षम व्यक्ति द्वारा शुल्क जमा करना अपेक्षित है और भुगतान कर पाने में अक्षम व्यक्तियों का निःशुल्क इलाज किया जाता है, वह भी अधिनियम की धारा 2 (1)(0) की परिधि के तहत आएगा इसमें इस बात का ध्यान नहीं रखा जाएगा कि शुल्क दे पाने में अक्षम व्यक्तियों का निःशुल्क सेवा इलाज किया जाता है। निःशुल्क सेवा भी सेवा ही होगी और सुविधा पाने वाले रोगी को इस अधिनियम के तहत उपभोक्ता कहा जाएगा।

9. किसी सरकारी अस्पताल/स्वास्थ्य केन्द्र/औषधालय में दी गई सेवा, जहां सेवा प्राप्त करने वाले सभी रोगियों (धनी और निर्धन) को निःशुल्क सेवा दी जाती है, इस अधिनियम की धारा 2(1)(0) में परिभाषित सेवा की परिधि से बाहर होगी। अस्पताल/नर्सिग होम में केवल पंजीयन के लिए दी गई सांकेतिक राशि के कारण इस स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आएगा।

10. किसी सरकारी अस्पताल/स्वास्थ्य केन्द्र/औषधालय में प्रदत्त सेवा, जहां शुल्क लेकर इलाज किया जाता है और ऐसी सेवा का उपभोग करने वाले अन्य व्यक्तियों का निःशुल्क इलाज किया जाता है, वह भी इस बात का ध्यान रखे बगैर कि शुल्क अदा करने में अक्षम व्यक्तियों का निःशुल्क इलाज किया जाता है, इस अधिनियम की धारा 2(1)(0) के तहत सेवा की परिधि में आएगा। अधिनियम के तहत निःशुल्क सेवा भी ष्सेवाष होगी और सुविधा का उपभोग करने वाले को उपभोक्ता कहा जाएगा।

11. यदि रोगी के पास चिकित्सा सुविधा के लिए बीमा पोलिसी है, जिसके तहत परामर्श, निदान तथा चिकित्सीय इलाज का व्यय बीमा कंपनी द्वारा वहन किया जाता है, ऐसे मामले में, मेडिकल प्रैक्टिशनर अथवा अस्पताल/नर्सिग होम द्वारा प्रदत्त सेवा इस अधिनियम की धारा 2(1)(0) में यथा परिभाषित ष सेवा ष की परिधि में आएगी।

12. इसी प्रकार से, जहां ष्सेवा ष्शर्त के रुप मे नियोक्ता अपने कर्मचारी तथा उसके ऊपर आश्रित पारिवारिक सदस्यों के इलाज का व्यय वहन करता है तो मेडिकल प्रैक्टिशनर द्वारा ऐसे कर्मचारी अथवा उसके परिजनों को दी गई सेवा भी इस अधिनियम की धारा 2(1)(0) के तहत मेडिकल प्रैक्टिशनर अथवा अस्पताल/नर्सिग होम द्वारा प्रदत्त सेवा को निःशुल्क नहीं कहा जाएगा बल्कि इसे भी सेवा माना जाएगा।

तद्नुसार, सरकारी अस्पताल, जो कतिपय श्रेणी के रोगियों से प्रयोक्ता प्रभार वसूलता है, इन्हें भी उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम में शामिल किया गया है।

यदि सूचना जगत और जनसंपर्क माध्यम से इस आश्य की मांग की जाती है तो तथापि चिकित्सा वृत्ति को ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए जब सरकार और नगरपालिका अस्पतालों को भी निःशुल्क होने के बावजूद इस अधिनियम के कार्यक्षेत्र के भीतर शामिल करने के लिए संशोधन किया जाएगा। उपभोक्ता के हितों के लिए संघर्षरत जनसंपर्क कर्मी इसके लिए आंदोलन कर रहे हैं।

जांच बिन्दु

1. अपकृत्य विधि क्या है? इस अधिनियम के तहत कोई मामला किन स्थितियों में किसी डॉक्टर के खिलाफ आपराधिक लापरवाही वाले मुकदमें से भिन्न है?
2. चिकित्सक अपकृत्य कानून के तहत अपना बचाव पक्ष कैसे प्रस्तुत कर सकता है?
3. क्या उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम सरकारी अस्पतालों में कार्यरत चिकित्सकों के मामले में लागू होता है। ऐसे चिकित्सक को किस तरह से गैर-सरकारी प्रैक्टिशनर से भिन्न समझा जाता है?

1.7.4 चिकित्सीय लापरवाही और चिकित्सकों/अस्पतालों के विरुद्ध मुकदमा

चिकित्सीय लापरवाही की परिभाषा अपने रोगियों के इलाज में पर्याप्त दक्षता और ध्यानपूर्वक इलाज नहीं करने के रुप में दी गई है। इस प्रकार लापरवाही सिद्ध करने के लिए निम्नांकित मुद्दे सुनिश्चित किए जाने हैं :

i. क्या रोगी की देखभाल करने की ड्यूटी थी;

ii. क्या इसका उल्लंघन हुआ है; और

iii. क्या ड्यूटी के उल्लंघन किए जाने से रोगी का नुकसान हुआ है।

उल्लेखनीय है कि शिकायतकर्ता को इन सभी के बीच संबंध स्थापित करना होगा।

मोटे तौर पर, दो तरह की चिकित्सीय लापरवाही होती हैः (क) सिविल लापरवाही - जब रोगी नुकसान के बदले पैसे के रुप में मुआवजा मांगता है। ऐसे मामले में, रोगी को दीवानी न्यायालय अथवा उपभोक्ता न्यायालय से संपर्क स्थापित करने का अधिकार है; (ख) आपराधिक लापरवाही जब कोई रोगी (परिचर) उस महिला/पुरुष को हुई क्षति के बदले चिकित्सक के विरुद्ध पुलिस/न्यायालय में पहुंचता है। रोगियों की मृत्यु होने पर सामान्यतौर पर जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, भारतीय दंड संहिता की विभिन्न धाराओं के तहत मामले दर्ज किए जाते हैं।

चिकित्सीय लापरवाही या तो अनजाने में हो सकती है अथवा ऐसा किया जा सकता है। इनके उद्देश्यों में पर्याप्त देखभाल न होने जैसे - अचेत रोगियों के मामले में सक्शन नहीं करने से किसी की मृत्यु हो गई हो आदि शामिल है।

- किसी शल्य चिकित्सा/प्रक्रिया के दौरान भ्रूण के हृदय की गति नहीं नोट करके इसकी निगरानी नहीं करने की वजह से भ्रूण हत्या।

- दिल की धड़कन बन्द होने पर रिससाइटेशन नहीं शुरु करना।

- दूसरी ओर, आपराधिक कृत्य में ऐसी स्थितियां आती है जब रोगी इलाज के प्रत्यक्ष प्रभाव के कारण घायल होता है। कई ऐसी स्थितियां हैं जिसे रेस्पाइयस लोकिटर अर्थात कृत्य/चीज स्वयं बोलता है। (i) ऑपरेशन थिएटर में मौजूद ऑपरेशन के औजार, यंत्र, स्वैब इत्यादि (ii) गलत तरीके से किया गया ऑपरेशन, डिजीट आई इत्यादि (iii) एनैस्थेटिक/आपातकालिक दवा का गलत इस्तेमाल।

इन दोनों के अतिरिक्त निगमित लापरवाही की अवधारण ऐसे मामले में लागू होती है जहां इलाज करने वाले अस्पताल/नर्सिंग होम के कारण रोगी को क्षति पहुँची है। ऐसे मामले में, सामान्यतः चिकित्सक की कोई भूमिका नहीं होती है बल्कि अस्पताल का प्रबंधन उत्तरदायी होता है।

तथापि मुकदमे/झंझट से बचने के लिए विधि और निषेध की ऐसी सूची बनाई जा सकती है, जिसमें इलाज व रोगी से संबंधित सभी पक्षों का समावेश किया जा सके। परन्तु कुछ मोटे-मोटे मार्गदर्शी सिद्धान्तों का उल्लेख किया जा सकता हैः

क. किसी भी प्रक्रिया/ऑपरेशन से पहले लिखित सहमति प्राप्त की जाए।
ख. हमेशा यह सुनिश्चित कर लें कि प्रयोग होने वाले उपस्कर एवं यंत्रों का भली-भाँति रख-रखाव किया गया है।
ग. यथासंभव केवल योग्य व अर्हक सहायकों को ही कार्य पर रखें।
घ. रोगी की जांच किए बगैर दवा नहीं लिखें
ड. फोन पर दवा के बारे में/नैदानिक सुझाव नहीं दें।
च. बीमारी के ठीक होने के बारे में समय की कोई गारंटी नहीं दें
छ. रोगी का हित सर्वोच्च है,उसे कोई हानि न पहुँचे।
ज. बिना नोटिस दिए अपने रोगी का एक पक्षीय कभी भी इलाज बन्द नहीं करें/अधित्याग नहीं करें।
झ. रोगी के प्रति सहानुभूति रखें और उसे पूर्ण व्यक्ति के रुप में स्वीकार करें नाकि किसी केस या बेड इत्यादि के रुप में
न. रोगी के सामने दूसरे सहकर्मी की निन्दा नहीं करें।
ट. रोगी के साथ अपने संबंध में कभी झूठ नहीं बोलें, धमकी नहीं दें अथवा धोखाधड़ी नहीं करें
ठ. चिकित्सा-विधिक मामले में विशेष सावधनी बरतें
ड. रोगी से हमेंशा बातचीत करें, ऐसा कभी नहीं मान लें कि वे अभिज्ञ है।
ढ. बच्चों के मामले में विशेष सतर्कता बरतें
ण. दुर्घटना एवं आपात विभाग में विशेष ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

1.7.5 अंग प्रत्यारोपण अधिनियम

पिछले तीन दशकों से प्रत्यारोपण प्रौद्योगिकी में तेजी से हुई प्रगति के कारण प्र ात्यारोपणोपरांत जीवित रहने की दरों में नाटकीय ढंग से बढोतरी हुई है। इसके फलस्वरुप न केवल अंगों की मांग और पूर्ति के बीच की खाई में निरंतर वृद्धि हुई है बल्कि इन प्रौद्योगिकियों का भी बहुत अधिक प्रयोग एवं अन्वेषण किया गया है। इसलिए अंग प्रत्यारोपण के संबंध में भी विधायन की आवश्यकता आ पड़ी।

किसी मृत व्यक्ति के शरीर से जीवित हृदय अथवा किडनी प्राप्त करने की मांग ने मस्तिष्क की मृत्यु ष्ब्रेन डेथ ष नामक नई संकल्पना को जन्म दिया है। अब ऐसा माना जाता है कि सभी अंग एक साथ काम करना बन्द नहीं करते हैं। जो अंग अभी भी काम कर रहे हैं उन्हें उपयोग में लाया

जा सकता है। मृत मस्तिष्क वाली काया से अन्य व्यक्तियों के लिए दो आँखें, हृदय, एक लीवर, दो कीडनियां प्राप्त की जा सकती हैं।

मस्तिष्क-मृत व्यक्ति पारंपरिक अर्थ में मृत नहीं होते हैं अर्थात जिसमें मस्तिष्क मृत था किन्तु श्वसन और रक्त संचालन नहीं रुका। दूसरे शब्दों में, मस्तिष्क मृत्यु की नयी संकल्पना के अनुसार, व्यक्ति मृत है किन्तु पुरानी अवधारणों के अनुसार व्यक्ति मृत नहीं है। क्या सांस लेने वाले व्यक्ति को मृत घोषित किया जाना चाहिए? क्या यह कानूनी होगा और क्या हमारा समाज ऐसे व्यक्ति िवशेष को मृत घोषित करेगा जिसका केवल मस्तिष्क मृत हो किन्तु वह सांस ले रहा हो अथवा जिसके दिल की धड़कन चल रही हो अथवा दोनों हों। क्या ऐसे व्यक्ति को केवल इस वजह से मृत घोषित कर देना चाहिए कि उसके अंगों की उपादेयता दूसरे के लिए है। कोई भी ऐसा कानून नहीं है जो ऐसे व्यक्तियों से अंग निकालने की इजाजत देता हो।

आज की तारीख में कोई भी ऐसा विशद कानून नहीं है जो अंग दान से संबंधित हो। कुछ स्थानों पर कतिपय विधायन हैः

1. बम्बई और कुछ और राज्यों में प्रयोज्य बम्बई कौर्नियल ग्राफ्टिंग अधिनियम 1957। इसके अनुसार व्यक्ति के मौखिक अथवा लिखित अनुरोध पर उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी आंखों का प्रयोग रोग-निवारण के प्रयोजनों से किया जा सकता है। किसी पंजीकृत मेडिकल प्रैक्टिशनर द्वारा किसी मान्यता प्राप्त संस्थान में आंख निकाली जा सकती है। 1976 के अधिनियम में किए गए संशोधनों के अनुसार कोई भी योग्य नेत्र विशेषज्ञ सरकार की पूर्व अनुमति से किसी निजी क्लिनिक में कौर्निया निकाल सकता है।
2. दिल्ली नेत्र अधिनियम 1982 (रोग-निदान के प्रयोजनों से उपयोग में लाने का प्राधिकार)
3. कान का परदा (ड्रम) और कर्ण अस्थि (रोग-निदान के प्रयोजनों के उपयोग हेतु प्राधिकार) अधिनियम, 1982 (1982 की स.ं28)
4. मुम्बई एनैटोमी अधिनियम, 1949
   इसमें मृतक की लावारिस लाशों को रोग-निदान के प्रयोजनों से अथवा आकारिकी परीक्षण अथवा चीर-फाड़ के प्रयोजनों से अस्पताल, चिकित्सा और शिक्षण संस्थानों को भेजे जाने का प्रावधन किया गया है।
5. महाराष्ट्र किडनी प्रत्यारोपण अधिनियम 1982

   इसमें रोग-निदान के प्रयोजनों से किडनी दान करने तथा मृतकों की किडनी के प्रयोग संबंधी प्रावधानों का उपबंध किया गया है। यह पूरे महाराष्ट्र राज्य में लागू है।

व्यापक विधायन, जिससे कैडवेर्स अथवा जीवित व्यक्तियों से अंग-निकालने तथा मानवीय अंगों का व्यावसायिक प्रयोग कारोबार नहीं हो सकता है और इसकी बहुत अधिक जरुरत है। ऐसा कोई विशिष्ट केन्द्रीय विधायन नहीं है जिसमें अंगों के क्रय-विक्रय की अनुमति दी गई हो।

भारतीय विधि मानवीय अंग-व्यापार के मामले में मूक है। प्रतिबंध न होने की स्थिति में यह मार्किट की मांग तथा आपूर्ति नियम पर निर्भर करता है।

मानव अंगों के व्यावसायिक कारोबार पर रोक और मानव अंगों के निकालने, उसके भंडारण तथा प्रत्यारोपण के विनियमन हेतु मानव अंग प्रत्यारोपण अधिनियम बनाया गया है। शुरु में यह गोवा, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र और अन्य संघ शासित क्षेत्रों में लागू किया गया किन्तु बाद में दूसरे राज्यों ने भी इसे स्वीकार किया। इस अधिनियम में, ब्रेन स्टेन डेथ, डोनर-रेसिपिएन्ट, हॉस्पिटल, निकट संबंधी, नैदानिक प्रयोजन तथा प्रत्यारोपण की परिभाषा दी गई है।

इस अधिनियम में किसी भी दानकर्ता (18 वर्ष की आयु से ऊपर का) को दो अथवा दो से अधिक अभिसाक्षियों की उपस्थिति में, जिसमें से एक निकट संबंधी हो, लिखित रुप में नैदानिक प्रयोजनों से अपने अंग को निकालने संबंधी घोषणा करने हेतु प्राधिकृत किया गया है। इसी प्रकार मृतक शरीर का अगला आनुवंशिक संबंधी (रिश्तेदार) भी नैदानिक प्रयोजनों से शरीर के अंगों को निकालने की अनुमति दे सकता है बशर्ते कि संबंधित व्यक्ति ने अपनी मृत्यु से पूर्व इस बारे में कोई आपत्ति नहीं जताई हो और किसी दूसरे रिश्तेदार को कोई आपत्ति नहीं है। इसमें यह भी उल्लेख है कि अंगों का प्रत्यारोपण केवल पंजीकृत मेडिकल प्रैक्टिशनर द्वारा ही किया जाएगा जो वैयक्तिक परीक्षण के माध्यम से बिलकुल संतुष्ट हो जाएगा कि शरीर मृत है।

ष ब्रेनस्टेम डैथ ष के मामले में, मृत्यु प्रमाणपत्र ''बोर्ड ऑफ मेडिकल एक्सपर्ट्स ष द्वारा जारी किया जाएगा जिसमें निम्नांकित व्यक्ति शामिल होंगें :

i. अस्पताल का प्रभारी रजिस्टर्ड मेडिकल प्रैक्टिशनर अर्थात मेडिकल सुपरींटेन्डेन्ट (चिकित्सा अधीक्षक);

ii. उपयुक्त प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित नामों की नामिति में से चिकित्सा अधीक्षक द्वारा नाम निर्दिष्ट किया जानेवाला कोई स्वतंत्र रजिस्टर्ड मेडिकल प्रैक्टशनर (विशेषज्ञ)

iii. उपयुक्त प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित नामों की नामिका में से चिकित्सा अधीक्षक द्वारा निर्दिष्ट न्यूरोलोजिस्ट अथवा न्यूरोसर्जन

iv. जिस व्यक्ति का ब्रेन स्टेम डेथ हुआ है, उसका इलाज करनेवाला रजिर्स्ट मेडिकल प्रैक्टिशनर।

इस अधिनियम में ऐसे मामले का भी विवेचन किया गया है, जिसमें अंगों का निकाला जाना प्राधिकृत नहीं है और अस्पताल में पड़े लावारिस मृतक-शरीरों के मामले में मानव अंगों को निकालने के संबंध में उपलब्ध है (अगले रिश्तेदार अथवा अन्य संबंधियों की उपस्थिति में 48 घंटे के भीतर) अस्पताल/जेल प्रभारी द्वारा निकाला जाए। यद्यपि, यदि इस

व्यक्ति की ऐसी मान्यता है कि निर्धारित 48 घंटे के बाद भी कोई निकट संबंधी मृतक-शरीर का दावा करने के लिए आ सकता है, वह महिला/पुरुष चिकित्सक अंग निकालने की अनुमति रोक कर रखता है।

इस अधिनियम में अंग प्रत्यारोपण के बारे में प्रतिबन्ध भी लगाया गया है और उल्लेख किया गया है, ष्मत्यु से पहले दानकर्ता के शरीर से निकाला गया कोई भी मानवीय अंग प्राप्तकर्ता के शरीर में तब तक प्रत्यारोपित नहीं किया जाएगा जब तक दान करनेवाला निकट संबंधी नहीं हो ष (अर्थात् पति/पत्नी, पुत्र, पुत्री, पिता-माता, भाई अथवा बहन) जहां अंग ग्रहण करने वाला व्यक्ति निकट संबंधी नहीं हो, उसके शरीर में अंग का दान करना हो, तो प्राधिकरण समिति की स्वीकृति के बिना ऐसा अंग प्रत्यारोपण नहीं किया जाएगा। ऐसे मामले में, दानकर्त्ता और प्राप्तकर्त्ता दोनों के ऑपरेशन थिएटर नियम के फार्म सं.10 में संयुक्त रुप से आवेदन करना होगा।

इसमें केन्द्रीय/राज्य सरकार द्वारा विधिवत बनाए गए उपयुक्त प्राधिकारी द्वारा अंग प्र ात्यारोपण हेतु अस्पतालों के विनियमन एवं पंजीकरण का भी उपबंध है। यह मानकों को प्र वर्तन में लाने के लिए अस्पतालों में रजिस्ट्रेशन, उसे समाप्त करने अथवा निरस्त करने तथा अधिनियम का ऐसे उपबंध संबंधी शिकायतों की जांच करने तथा प्रत्यारोपण की गुणवत्ता की जांच करने हेतु अस्पतालों का समय समय पर निरीक्षण करने के लिए भी उत्तरदायी होगा। अधिनियम में बिना किसी प्राधिकार के किसी रजिस्टर्ड मेडिकल प्रैक्टिशनर अथवा मानक अंगों का प्रत्यारोपण करने की दशा में पांच वर्षों तक का कारावास और/अथवा दस हजार रुपये तक के जुर्माना का भी प्रावधान किया गया है। अंग प्रत्यारोपण के व्यावसायिक प्रयोग हेतु दो वर्ष तक के कारावास और दस हजार रुपये तक का जुर्माना परिकल्पित है।

अधिनियम में केन्द्रीय सरकार के लिए भी इस अधिनियम के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए नियम बनाने का उपबंध किया गया है। तदनुसार, केन्द्रीय सरकार ने 4 फरवरी, 1995 के जी.एस.आर. 57 (ई.)द्वारा प्रत्यारोपण नियम प्रकाशित किया है। इसमें दानकर्ता और प्राप्तकर्ता के बीच ठीक से मिलान कर लेने की बात कही गई है, खासकर ऑपरेशन करने से पूर्व हिस्टो-कम्पेबीलीटी (अस्थि-अनुकूलता) के संबंध में ऐसा कहा गया है। इसमें प्र ात्यारोपण करनेवाले अस्पताल के लिए स्थान, जनशक्ति एवं उपस्कर संबंधी अपेक्षाओं का उल्लेख किया गया है।

जांच बिन्दु

1. क्या धन लेकर अंग दान करना अथवा गरीब और जरुरतमंद लोगों को अंगदान करने के लिए अभिप्रेरित कर अंग निकालना अपराध है?
2. क्या अनजाने में शल्य चिकित्सा के क्रम में रोगी के स्वस्थ अंग को निकालना अपराध है?

3. यदि कोई व्यक्ति अपना अंग बेचना चाहता है तो इसे निकालना क्या कानूनी है? यदि नहीं तो यह कैसे अपराध है?

1.7.6 गर्भपात अधिनियम

संक्षेप में, इस अधिनियम में गर्भपात को कानूनी ठहराया गया है। इस अधिनियम के प्रभावी होने से पूर्व गर्भपात गैर-कानूनी और दंडनीय था।

इस कानून में स्वास्थ्य, मानवता और यूजेनिक कारणों से (जहां इस बात का पर्याप्त जोखिम हो कि यदि बच्चे का जन्म हुआ तो वह विकृति और रोग ग्रस्त होगा), इन आधारों पर गर्भपात के लिए उदारवादी प्रावधान किया गया है। बदलते हुए सामाजिक परिवेश को देखते हुए ऐसा किया गया है।

इसमें सुरक्षित गर्भपात का भी उपबंध किया गया है। उपबंध के अनुसार, केवल सरकार द्वारा स्थापित अथवा अनुरक्षित अस्पताल में अथवा तत्काल इस अधिनियम के प्रयोजनार्थ गर्भपात करने के लिए अनुमोदित किसी स्थान पर किसी रजिस्टर्ड मेडिकल प्रैक्टिशनर द्वारा ही किए जाने का उपबंध है।

1.7.7 प्रसव पूर्व नैदानिक तकनीक अधिनियम (विनियमन एवं दुरुपयोग निषेध) अधिनियम 1994 (1994 का 57) (20 सितम्बर, 1994)

आनुवंशिक अथवा किण्वीय विकृति अथवा गुणसूत्री असामान्यता अथवा कतिपय जन्मजातीय विकृतियां, लैंगिक दोष का पता लगाने तथा प्रसवपूर्व लिंग निर्धारण की तकनीक के दुष्प्रयोग, जिससे नारी भ्रूण हत्या होती है, इसे रोकने तथा इससे जुड़े अन्य मामलों में प्रसवपूर्व नैदानिक तकनीक के उपयोग के विनियमन हेतु किसी अधिनियम के अपेक्षित होने के कारण यह अधिनियम बनाया गया।

1. भारत के राजपत्र, भाग-II (1), असाधारण, क्रम सं 74, दिनांक 20.9.1994 में यथा प्रकाशित।

2. दिनांक 21.12.1995 की नोटिस सं.क.आ. 990 (ई) द्वारा 1 जनवरी, 1996 को प्रकाशित।

प्रसवपूर्व नैदानिक तकनीक संबंधी विनियम

1. खंड 3 में विनिर्दिष्ट किसी भी शर्त से संतुष्ट होने के बाद खंड (2) में उल्लिखित प्रयोजनों को छोड़कर प्रसव-पूर्व नैदानिक तकनीकों का प्रयोग किसी भी व्यक्ति द्वारा रजिस्टर्ड जेनेटिक काउंसिलिंग सेन्टर अथवा जेनेटिक लेबोरेटरी अथवा जेनेटिक क्लिनिक सहित किसी भी स्थान पर नहीं किया जाएगा;

2. निम्नांकित असामान्यताओं में से किसी एक का पता लगाने के लिए अतिरिक्त प्रसव-पूर्व नैदानिक तकनीकों का प्रयोग नहीं किया जाएगाः

i. गुणसूत्रीय असामान्यताएं;

ii. आनुवंशिक-किण्वीय रोग;

iii. हीमोग्लोबिन रोग;

iv. लैंगिक-आनुवंशिक रोग;

v. जन्म-जात विसंगतियां;

vi. केन्द्रीय पर्यवेक्षण बोर्ड द्वारा यथा विर्निदिष्ट कोई अन्य विसंगति अथवा रोग;

3. जब तक कोई योग्य तकनीशियन/चिकित्सक इस तथ्य से संतुष्ट नहीं हो जाए कि निम्नलिखित में से किसी भी शर्तों को पूरा किया गया है तब तक किसी भी प्रसव-पूर्व तकनीक का प्रयोग नहीं किया जाएगाः

i. गर्भवती महिला की आयु 35 वर्ष से अधिक हो;

ii. गर्भवती महिला का दो या दो से अधिक बार स्वतः गर्भपात या भ्रूण-हत्या हो चुकी हो;

iii. गर्भवती महिला को किसी टेरायेगेनिक एजेंट यथा ड्रग्स, विकिरण, इंफेक्शन अथ वा केमिकल से किसी प्रकार की क्षति होने की आशका हो;

iv. गर्भवती महिला के परिवार में मानिसक दोष अथवा शारीरिक विकृति यथा स्पैस्टिसीटी अथवा किसी अन्य आनुवंशिक रोग का इतिहास हो;

v. केन्द्रीय पर्यवेक्षण बोर्ड द्वारा यथा विनिर्दिष्ट कोई अन्य शर्त खंड 2 में विनिर्दिष्ट प्र ायोजनों को छोड़कर।

4. गर्भवती महिला का पति अथवा संबंधी होने के नाते कोई भी व्यक्ति उसको प्रसवपूर्व तकनीकी जांच कराने के लिए प्रोत्साहित नहीं करेगा।

5. गर्भवती महिला की लिखित सहमति और भ्रूण के लिंग के बारे में खुलासा करने का निषेध

i. उपर्युक्त स्थितियों को छोड़कर कोई भी व्यक्ति धारा-3 के खंड (2) में संदर्भित कोई भी व्यक्ति यह परीक्षण नहीं करेगा।

1.7.8 ड्रग्स एवं कॉस्मेटिक्स अधिनियम

ड्रग्स एवं कॉस्मेटिक्स के आयात, विनिर्माण, संवितरण एवं बिक्री को विनियमित करने का अधिनियम।

जहां ड्रग्स (औषधि) के आयात, विनिर्माण, संवितरण का विनियमन तात्कालिक आवश्यक हो।

और सभी प्रान्तों के विधान मंडलों ने भारत सरकार के अधिनियम, 1935 की धारा 103 के संदर्भ में संकल्प पारित किया है (26 जी.ई.ओ.5, सी.2) उपर्युक्त मामले और उसके अनुषंगी मामले के संबंध में, उक्त अधिनियम की सातवीं अनुसूची की सूची II में उल्लिखित है।

इसके अधीन आयुर्वेदिक और युनानी दवाओं को शामिल करने के लिए इस अधिनियम में फिर संशोधन किया गया। औषधि अधिनियम में औषधि तकनीकी सलाहकार बोर्ड, के गठन का प्रावधान है और आयुर्वेदिक एवं युनानी औषधि तकनीकी सलाहकार बोर्ड केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों को इस अधिनियम के कार्यान्वयन से संबंधित विभिन्न तकनीकी मामले के बारे में केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों को सलाह देता है। औषधि परामर्शदात्री समिति में केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के प्रतिनिधि होते हैं। यह समिति देश भर में अधिनियम के ि वभिन्न उपबंधों के कार्यान्वयन में समरुपता लाने के लिए केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों तथा औषधि तकनीकी सलाहकार बोर्डों को सलाह देती है। केन्द्रीय औषधि प्रयोगशाला आयातित तथा विनिर्मित (4) औषधि का विश्लेषण कर इसकी निर्माण सामग्री, शुद्धता तथा प्रभा वमूलकता का पता लगाती है। इस अधिनियम में यह भी उपबंध है कि दवा के कवर के उपर पेटेंट अथवा प्रोपराइटरी ड्रग का र्फामूला भी लिखा होना चाहिए।

औषधि के नमूने का विश्लेषण करने के प्रयोजनार्थ औषधि निरीक्षक को उचित मूल्य देकर औषधि प्राप्त करनी चाहिए। अधिप्राप्त औषधि को चार भागों में विभाजित किया जाना चाहिए, जिसका एक भाग परीक्षण हेतु औषधि विश्लेषक को भेजा जाना चाहिए, दूसरा भाग उसे अपने पास रखना चाहिए, तीसरा भाग विक्रेता के पास छोड़ दिया जाना चाहिए और चौथा भाग जहां से विक्रेता ने इसे खरीदा है वहां भेज देना चाहिए। प्रत्येक सैम्पल को सील करके उस पर विक्रेता के हस्ताक्षर के साथ-साथ अपने हस्ताक्षर करने चाहिए जिसका अन्य ि ववरण पैकेटों के कवर पर लिखा होना चाहिए।

ड्रग्स एण्ड कॉस्मेटिक्स एक्ट, 1940 (पूर्ववर्ती 1940 की औषधि अधिनियम) में किए गए उपबंधों के तहत 1945 में एक नियम लागू हुआ जिसे ड्रग्स एवं कॉस्मेंटिक्स नियम, 1945 कहा जाता है। इस नियम से भारत में दवा का आयात, विनिर्माण, संवितरण एवं इसकी बिक्री विनियमित होती है। इस नियम में खुदरा विक्रेता द्वारा दवा की बिक्री की प्र ाक्रिया बताई गई है। खुदरा विक्रेता को एक रजिस्टर रखना चाहिए जिसमें बिक्री की तारीख, क्रम सं. सहित निम्नांकित सूचना की प्रविष्टि होनी चाहिएः

1. रोगी का नाम और पता
2. दवा लिखने वाले चिकित्सक का नाम व पता
3. दवा का नाम और मिश्रण इत्यादि में प्रयुक्त सामग्री का नाम और इनका परिणाम
4. इस नियम की कतिपय अनुसूचियों में सूचीबद्ध दवाओं को बेचते समय, विनिर्माता का नाम, उत्पाद की बैच संख्या और दवा की निर्धारित अवधि की समाप्ति की तारीख का भी रिकॉर्ड होना चाहिए।

5. जिस व्यक्ति की देख-रेख में दवा का मिश्रण तैयार किया गया हो और बेचा गया हो, उसके भी हस्ताक्षर वहां होना चाहिए।

(अनुसूची ष्ग ष में जैविकीय एवं विशेष उत्पादों की सूची अन्तर्विष्ट है - अनुसूची ष्एच ष में जहरीली दवाएं हैं जिसे बिना डाक्टर की पर्ची के नहीं बेचा जा सकता है - अनुसूची ष्एल ष में एन्टी बायोटिक, एन्टी हिस्टामीनिक एवं अन्य चिकित्सा संबंधी एजेंट आते हैं)

इस अधिनियम से ड्रग्स एण्ड कास्मेटिक्स का विनिर्माण, संवितरण, आयात एवं बिक्री कार्य विनियमित होता है।

इस अधिनियम के लागू होने से उत्पन्न होने वाले तकनीकी मामलों में सुझाव/सलाह देने के लिए तथा इस अधिनियम द्वारा इसे सौंपे गए कार्यों के निर्वहन के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा औषधि तकनीकी सलाहकार बोर्ड का गठन किया जाता है। आयुर्वेदिक, सिद्ध और यूनानी दवाओं के लिए अलग से आयुर्वेदिक, सिद्ध एवं यूनानी औषधि तकनीकी सलाहकार बोर्ड का सृजन किया गया है।

इस अधिनियम में गुणवत्ता मानक, गलत ब्रांड वाले अपमिश्रित नकली द वाओं/कॉस्मेटिक्स के बारे में व्याख्या की गई है। इसमें गैर-मानक मदों का उत्पादन एवं आयात निषिद्ध है। इसमें विनिर्माताओं के नाम, इत्यादि के खुलासे को भी अनिवार्य बनाया गया है। विनिर्माताओं के कुछ अन्य दायित्व भी निर्धारित किए गए हैं।

इस अधिनियम के उपबंधों का अतिलंघन दण्डनीय अपराध है।

1.7.9 जैव-चिकित्सीय अपशिष्ट पदार्थ (प्रबंधन एवं हैंडलिंग) संबंधी नियम

ये नियम 20 जुलाई, 1998 को अधिसूचित किए गए थे और ये किसी भी रुप में बायोमेडिकल वेस्ट के सृजन, संग्रहण, प्रापण, भंडारण, ढुलाई, परिमार्जन बिक्री से संबद्ध सभी व्यक्तियों पर लागू होते हैं। जैव-चिकित्सीय अपशिष्ट पदार्थ की परिभाषा-मानव अथवा जन्तुओं के डायगनोसिस, इलाज अथवा टीकाकरण अथवा इससे संबंधित शोधपरक कार्यकलापों के दौरान अथवा अनुसूची ष्क ष में उल्लिखित श्रेणियों सहित जैव-पदार्थों के उत्पादन अथवा परीक्षण के दौरान उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थ के रुप में दी गई है।

इस अधिनियम में बताया गया है कि जैव-चिकित्सीय अपशिष्ट पदार्थ उत्पन्न करने वाले संस्थान के प्रत्येक धारक (जिसमें अस्पताल, नर्सिग होम, क्लिनिक, डिस्पेंसरी, वेटरीनरी संस्थान, गौशाला आदि पैथोलोजिकल लेबोरेटरी, ब्लड बैंक शामिल है) का यह कर्त्तव्य होगा कि ऐसे अपशिष्ट पदार्थ की हैंडलिंग इस तरह सुनिश्चित करे कि इसका मानव के स्वास्थ्य

तथा पर्यावरण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़े। धारक की परिभाषा ऐसे व्यक्ति के रुप में की गई है जिसका किसी संस्थान और/अथवा इसके परिसर पर नियंत्रण है।

जैव-चिकित्सीय अपशिष्ट पदार्थ को दस श्रेणियों में विभाजित किया गया है और सृजन के स्थल पर इन्हें विभिन्न रंगों से कोड किए गए कन्टेनरों में संग्रहण, ढुलाई, परिमार्जन एवं अन्तिम निपटान के लिए रखा जाना है। इसकी अनुमति अथवा प्राधिकृत करने संबंधी शक्ति प्रत्येक राज्य/संघ राज्य क्षेत्र के विहित प्राधिकारी के पास निहित है।

जैव-चिकित्सीय (बायोमेडिकल) अपशिष्ट पदार्थ की अभिक्रिया संबंधी सुविधाओं की स्थापना के बारे में भी मार्ग-निर्देश दिए गए हैं। अनुमति/प्राधिकरण प्राप्त किए बगैर जैव-चिकित्सीय अपशिष्ट पदार्थ (बायोमेडिकल वेस्ट) के सृजन न करने के बारे में अनुदेश दिए गए हैं। जैव-चिकित्सीय अपशिष्ट (बायोमेडिकल वेस्ट) पदार्थ के उत्पाद/परिशोधन संबंधी प्र ाधिकरण को निरस्त करने की शक्ति भी अनुमति एवं प्राधिकार देनेवाले प्राधिकारी को दी गई है। इस शक्ति का प्रयोग ऐसी स्थिति में किया जाएगा जब जैव चिकित्सीय अपशिष्ट पदार्थ के पृथक्करण इसकी हैंडलिंग, ढुलाई और अंतिम ट्रीटमेंट करने में किसी प्रकार की कमी पाई जाती है।

जैव-चिकित्सीय अपशिष्ट पदार्थ (बायोमेडिकल वेस्ट) के जेनरेटर एवं ऑपरेटर के उत्तरदायित्व को भी विस्तार से दिया गया है। बायोमेडिकल अपशिष्ट पदार्थ के परिशोधन एवं निपटान के बारे में बायोमेडिकल पदार्थ की प्रकृति के आधार पर वैकल्पिक माग सहित संस्तुतियां दी गई हैं। नियमों में यह भी सुझाव दिया गया है कि बायोमेडिकल वेस्ट अपशिष्ट पदार्थ उत्पन्न करने वाले अस्पताल/हेल्थकेयर संस्थान के लिए रिकार्ड रखना और दुर्घटनाओं का प्रतिवेदन तथा इसकी अनुवर्ती कार्रवाई की जानकारी देना भी अनिवार्य होगा। अपशिष्ट पदार्थ की श्रेणी के अनुसार नियम में परिशोधन (ट्रीटमेंट) एवं निपटान के विकल्प भी सुझाए गए हैं, हेल्थ केयर संस्थानों और अस्पतालों द्वारा इनका सख्ती से अनुपालन करना चाहिए।

विभिन्न अस्पतालों के विभिन्न श्रेणियों के अपशिष्ट पदार्थ के बीच भेद करने के लिए विभिन्न कन्टेनरों के लिए अलग-अलग रंग की कोडिंग करने का भी सुझाव दिया गया है, जिससे जैव-चिकित्सीय अपशिष्ट पदार्थ अभिक्रिया के स्थल तक सुचारु रुप से ढुलाई की जा सके ताकि जैव-चिकित्सीय अपशिष्ट पदार्थ के लिए उचित अभिक्रिया प्रौद्योगिकी का प्र ायोग किया जा सके।

अभिक्रिया (ट्रीटमेंट) सुविधाएं यथाः इन्सीनेरेटर, ऑटोक्ले इत्यादि जैसी सुविधाओं की संस्थापना एवं प्रचालन केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अनुसार विशिष्ट मार्गनिर्देश दिए गए हैं जिनका सख्ती से अनुपालन किया जाना है।

1.8 प्रशासन से संबंधित कानून

1.8.1 औद्योगिक विवाद अधिनियम

यह अधिनियम इसके तहत गठित भारतीय श्रम न्यायालय के लिए बहु-प्रचलित है। इस अधिनियम से भारतीय कर्मचारियों को सर्वाधिक संरक्षण मिला है। इस अधिनियम में कर्मचारी और नियोक्ता तथा इसके विलोमतः विवादों के निपटान तथा अधिनिर्णय के लिए भी पर्याप्त क्रियाविधि का उपबंध किया गया है।

यह अधिनियम 2500/- रुपये प्रतिमाह से अधिक पारिश्रमिक पाने वाले पर्यवेक्षण अथवा प्रबंधकीय क्षमता में कार्यरत व्यक्तियों के मामले में लागू नहीं होता है।

यह हड़ताल और तालाबंदी, समूल नष्ट करने और बर्खास्तगी तथा अनुचित श्रमिक गतिविधियों से संबंधित है।

इसमें कर्मचारियों की सेवा समाप्त करने के बारे में विशेष उपबंध किए गए हैं। अगर अनुशासनिक कार्रवाई करके दंड स्वरुप किसी कर्मचारी की सेवा समाप्त कर दी जाती है, कर्मचारी को नैसर्गिक न्याय के उपबंधों तथा उन्हें अपनी ओर से प्रतिनिधित्व का कोई मौका नहीं दिया गया, इसके अतिरिक्त किसी भी प्रकार का बचाव नहीं किया जा सकता है। यदि अनुशासनिक कार्रवाई किए बगैर ही बिना दंड के ही सेवा समाप्त की जाती है, तो कर्मचारी को सेवा से हटाए जाने के बदले मुआवजा मांगने का अधिकार है (इस अधिनियम के कतिपय अपवाद और अन्य उपबंधों को छोड़कर)। इसकी धारा 2 (0) में विस्तार से बताया गया है कि किन परिस्थितियों में दंड और सेवा से हटाए जाने का अनुलाभ दिए बगैर किसी व्यक्ति की सेवा समाप्त की जा सकती है।

औद्योगिक विवादों के निपटान हेतु अधिनिर्वाचक अधिकारी का प्रावधान है, यदि सामंजस्य के दौरान किसी प्रकार का निपटान नहीं होता है तो सामंजस्य अधिकारी सरकार को विकास प्रतिवेदन देता है जो उस औद्योगिक विवाद के अभिनिर्णय हेतु श्रम न्यायालय को भेजता है। श्रम न्यायालय के पास ऐसे किसी मामले के अभिनिर्णय की वृहत शक्तियां हैं।

यह अधिनियम शिक्षा, वैज्ञानिक अनुसंधान अथवा प्रशिक्षण संस्थानों, अस्पतालों एवं औषधालयों, खादी अथवा ग्रामोद्योग और घरेलू सेवा, कृषि कार्य इत्यादि पर लागू नहीं होता है।

हड़ताल और तालाबंदी

22. हड़ताल और तालाबंदी का निषेध

(1) किसी सार्वजनिक उपादेयता में नियोजित कोई भी व्यक्ति संविदा का हनन करते हुए हड़ताल पर नहीं जाएगाः

(क) एतत्पश्चात किए गए उपबंध के अनुसार हड़ताल पर जाने से छः सप्ताह पूर्व नियोक्ता को हड़ताल नोटिस दिए बगैर; अथवा

(ख) ऐसी नोटिस देने के चौदह दिन के भीतर; अथवा

(ग) उपर्युक्त ढ़ंग से ऐसी किसी भी नोटिस में हड़ताल की विनिर्दिष्ट तारीख के बीतने से पहले; अथवा

(घ) किसी सामंजस्य अधिकारी के समक्ष किसी सामंजस्य की कार्यवाही लंबित रहने के दौरान और ऐसी कार्यवाही पूरी होने के सात दिन बाद।

(2) किसी भी जन उपादेयता सेवा से संबंधित कोई नियोक्ता अपने किसी भी कामगार को लॉक आउट नहीं करेगाः

(क) लॉक आउट करने से पहले छः सप्ताह के भीतर एतत्पश्चात किए गए उपबंध के रुप में उन्हें लॉक-आउट की नोटिस दिए बगैर; अथवा

(ख) ऐसी नोटिस देने के चौदह दिन के भीतर; अथवा

(ग) उपर्युक्त ढ़ंग से ऐसी किसी भी नोटिस में हड़ताल की विनिर्दिष्ट तारीख के बीतने से पहले; अथवा

(घ) किसी सामंजस्य अधिकारी के समक्ष किसी सामंजस्य की कार्यवाही लंबित रहने के दौरान और ऐसी कार्यवाही पूरी होने के सात दिन बाद।

(3) इस धारा के तहत लॉक-आउट अथवा हड़ताल की नोटिस आवश्यक नहीं होगी जहां पहले से हड़ताल किया गया है अथवा जैसा भी मामला हो, लोक उपादेयता सेवा में लॉक आउट किन्तु नियोक्ता ऐसे लॉक आउट अथवा हड़ताल की सूचना इसकी घोषणा होने के दिन ऐसे प्राधिकारी को देगा जिसे उपयुक्त सरकार द्वारा या तो सामान्य तौर पर अथवा किसी क्षेत्र विशेष के लिए अथवा लोक उपादेयता सेवा के किसी वर्ग विशेष के लिए दिया जाएगा।

(4) उपधारा (1) में संदर्भित हड़ताल का नोटिस उतनी संख्या में व्यक्तियों द्वारा ऐसे व्यक्ति अथवा व्यक्तियों को इस ढ़ग से दी जाएगी जैसा विहित किया जाए।

(5) उपधारा (2) में संदर्भित लॉक-आउट की नोटिस यथा विहित ढ़ंग से दी जाएगी।

(6) यदि किसी दिन नियोक्ता को स्वयं द्वारा नियोजित व्यक्ति से उपधारा (1) में यथासंदर्भित ऐसी कोई नोटिस मिलती है अथवा वह स्वयं द्वारा नियोजित किसी व्यक्ति को वह ऐसी कोई नोटिस देता है, और ऐसी कोई भी नोटिस उपधारा (2) में यथासंदर्भित नोटिस है तब वह पांच दिन के भीतर इसका प्रतिवेदन उपयुक्त सरकार अथवा सरकार द्वारा यथाविहित किसी ऐसे प्राधिकारी को देगा, कि उसे ऐसी कितनी नोटिस प्राप्त हुई है अथवा उस दिन उसने कितनी नोटिस जारी की हैं।

23. हड़ताल और लॉक आउट का सामान्य निषेध

किसी औद्योगिक निकाय में नियोजित कोई कामगार निविदा का उल्लंघन करते हुए हड़ताल पर नहीं जाएगा और ऐसे कामगार का कोई भी नियोक्ता लॉक-आउट की घोषणा नहीं करेगा।

(क) बोर्ड के समक्ष किसी सामंजस्य कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान और ऐसी कार्यवाही पूरी होने के सात दिन बाद;

(ख) किसी श्रम न्यायालय, न्यायाधिकरण अथवा राष्ट्रीय न्यायाधिकरण में कार्यवाही लंबित होने के दौरान और दो महीने में तथा ऐसी कार्यवाही पूरी होने के बाद;

[3][(खख) किसी विवाचक के समक्ष विवाचन संबंधी कार्यवाही लंबित रहने के दौरान और ऐसी कार्यवाही पूरी होने के दो महीने बाद, जहां आई ओ ए की उपधारा 3 ए के तहत कोई अधिसूचना जारी की गई हो; अथवा]

(ग) किसी अवधि के दौरान जिसमें कोई निपटान अथवा निर्णय अथवा निपटान के अंतर्गत आनेवाले किसी मामले में लागू हो।

1. न्यायाधिकरण पद 1956 के अधिनियम 36 की धारा 17 द्वारा प्रतिस्थापित (10.3.1957 से लागू)।
2. अथवा शब्द 1964 के अधिनियम 36 की धारा 11 द्वारा प्रतिस्थापित (19.12.1964 से प्रभावी)।
3. 1964 के अधिनियम 36, धारा 11 द्वारा शामिल (19.12.1964 से प्रभावी)।

24. गैर-कानूनी हड़ताल और तालाबंदी

1. कोई भी हड़ताल अथवा लॉक-आउट गैर कानूनी होगा यदि -

i. यह धारा 22 अथवा 23 का उल्लंघन करते हुए शुरु किया जाता है अथवा इस आशय की घोषणा की जाती है; अथवा

ii. धारा 10 की उपधारा के तहत बने किसी आदेश के उल्लंघन में यह जारी रहता है (अथवा धारा 10 ए की उपधारा (4ए)।

(2) जहां किसी औद्योगिक विवाद के अनुसरण में कोई हड़ताल अथवा लॉक आउट पहले ही आरंभ हो चुका है अथवा विवाद को बोर्ड (कोई विवाचक, श्रम न्यायालय, न्यायाधिकरण अथ वा राष्ट्रीय न्यायाकरण) को भेजे जाने के समय जारी है, ऐसे हड़ताल अथवा लॉक-आउट को गैर कानूनी नहीं माना जाएगा बशर्ते कि ऐसा हड़ताल अथवा लॉक-आउट इस अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन करते हुए नहीं शुरु किया गया था अथवा धारा 10 [1](अथवा धारा 10 ए की उपधारा (4ए) की उपधारा (3) के तहत इसे जारी रखा जाना प्रतिषिद्ध नहीं था।

(3) किसी गैर कानूनी लॉक आउट के परिणामस्वरुप घोषित हड़ताल अथवा किसी गैर-कानूनी हड़ताल के परिणामस्वरुप घोषित लॉक-आउट को गैर-कानूनी नहीं माना जाएगा।

1. 1964 के अधिनियम 36 की धारा 12 द्वारा शामिल (19.12.1964 से लागू)।

2. न्यायाधिकरण के स्थान पर अथवा 1956 के अधिनियम 36 की धारा 18 द्वारा प्रतिस्थापित।

25. गैर-कानूनी हड़ताल और तालाबंदी को वित्तीय स्हायता देने का निषेध - कोई भी व्यक्ति जानबूझकर किसी भी गैर कानूनी हड़ताल अथवा तालाबंदी को प्रत्ययरुप से बढ़ाने के लिए व्यय अथवा किसी प्रकार के धन का उपयोग नहीं करेगा।

1.8.2 न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम में कामगारों के लिए न्यूनतम मजदूरी का प्रावधान किया गया है। यह इस अधिनियम की अनुसूची में दिए गए सभी उद्योगों पर लागू होता है। केन्द्र और राज्य सरकार को इस अनूसूची में किसी अन्य उद्योग को शामिल करने की शक्ति दी गई है।

न्यूनतम मजदूरी सरकार द्वारा निर्धारित की जाती है। सरकार द्वारा निर्धारित मजदूरी से कम मजदूरी देने वाले नियोक्ता के लिए इस अधिनियम के तहत दण्ड का विधान है।

इस अधिनियम में कार्य अधिकतम घंटे, साप्ताहिक विश्राम दिवस और समयोपपरि भत्ते से संबंधित प्रावधान किए गए हैं। इस अधिनियम के तहत देय पारिश्रमिक का नगद भुगतान किया जाना है।

इसमें नियोक्ता द्वारा रखे गए कुछ रजिस्टरों एवं उनके द्वारा आय-व्यय विवरणी प्रस्तुत करने का भी प्रावधान है।

1.8.3 कामगार मुआवजा अधिनियम 1923

इस अधिनियम में कामगारों के नियोजन के दौरान दुर्घटनाग्रस्त होने की दशा में कामगारों अथवा उनके आश्रितों के लिए मुआवजे का प्रावधान है। इस दुर्घटना से कामगार को विकलांग होना चाहिए अथवा उसकी मृत्यु होनी चाहिए। यह अधिनियम व्यवसाय के कारण होने वाले रोग के मामले में भी लागू होता है (जो कुछ कामगारों की कतिपय स्थितियों के कारण होते हैं)

यह अधिनियम इस अधिनियम की अनुसूची II और III में उल्लिखित इकाईयों प्रतिष्ठानों के मामले में प्रयोज्य है। तथापि यह कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के तहत आनेवाले प्रतिष्ठानों के मामले में लागू नहीं है।

जानबूझकर संरक्षा नियम के उल्लंघन, संरक्षा डिवाइस अवमानना अथवा शराब ड्रग्स आदि के नशे की हालत में होने के कारण हुई दुर्घटना के लिए राशि का भुगतान नहीं किया जाएगा।

यदि नियोक्ता को ऐसी आवश्यकता महसूस हो, तो कर्मचारी की चिकित्सा जांच किसी योग्य मेडिकल प्रैक्टिशनर द्वारा कराई जा सकती है।

अधिकांश मामले में, इस अधिनियम के तहत सरकार के पास मुआवजे की राशि जमा कर दी जाती है, जो मुआवजे का संवितरण करती है।

1.8.4 प्रसूति लाभ अधिनियम, 1961

इस अधिनियम में, किसी भी महिला कर्मी को बच्चे को जन्म देने, गर्भपात अथवा गर्भाधान के दौरान बीमार पड़ने, प्रसूति और बच्चे के असामयिक जन्म अथवा गर्भपात के कारण छुट्टी की अ वधि के दौरान पारिश्रमिक के भुगतान का प्रावधान है।

उपर्युक्त कारणों से छुट्टी पर रहने के दौरान महिला पूर्ण पारिश्रमिक/मजदूरी की हकदार है। बच्चे को जन्म देने के लिए 12 सप्ताह की प्रसूति छुट्टी मिलती है, जबकि गर्भपात होने पर 6 सप्ताह की पूर्ण मजदूरी पाने की हकदार होगी। अन्य कारणों से यह अवधि 1 महीने की है।

इस लाभ का दावा उन महिलाओं द्वारा किया जा सकता है, जिन्होंने प्रतिष्ठान में पिछले 12 महीने के दौरान न्यूनतम 80 दिन कार्य किया है। यह अधिनियम किसी ऐसी फैक्ट्री के मामले में लागू नहीं होता है जिसके कर्मचारियों के लिए कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम लागू है। 6500/- रुपये से अधिक वेतन पाने वाली महिलाएं भी इस लाभ की हकदार नहीं हैं।

इस लाभ का दावा करने का नोटिस महिलाओं द्वारा नियोक्ता को दिया जाना है। इस लाभ की हकदारी के दौरान नियोक्ता को उस महिला को सेवा से हटाने के लिए प्रतिषिद्ध किया गया है।

इस अधिनियम की धारा 18 में उन स्थितियों का विवेचन किया गया है, जब इन प्रसुविधाओं को समाप्त किया जा सकता है।

इस कानून के कार्यान्वयन हेतु निरीक्षकों के लिए उपबंध भी बनाए गए हैं। निरीक्षकों को इस अधिनियम के तहत भुगतान करने के लिए नियोक्ता को निर्देश देने की शक्ति प्रदान की गई है।

1.8.5 उदीयभान मुद्दे - सी.ई.आर.एः एम.ओ.सी.आर.ए.

नैदानिक स्थापना विनियामक अधिनियम

नैदानिक अभिलेख अनुरक्षण अधिनियम

क. नैदानिक स्थापना विनियामक अधिनियम (सीईआरए)

- प्रस्तावित विधायन - अनुच्छेद 252 राज्यों की संतुष्टि के लिए भेजा गया है (न्यूनतम 2)
- नैदानिक स्थापनाओं, नर्सिग होम इत्यादि के लिए अनिवार्य निबन्धन
- भवन, जगह, सुविधा, उपस्कर।
  जनशक्ति संबंधी न्यूनतम मानक
- देखे गए/भर्ती किए गए सभी व्यक्तियों का अभिलेख रखना अपेक्षित
- रोगी को भर्ती, परामर्श, जांच, इलाज के अभिलेख की प्रति उपलब्ध कराना अपेक्षित
- विहित प्राधिकारी नैदानिक केन्द्रों का निरीक्षण कर आवश्यक कार्रवाई कर सकता है
- मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद की विनियमन एवं रेटिंग करने की दोहरी भूमिका होगी।
- नैदानिक केन्द्र को बन्द करने सहित अधिनियम के उल्लंघन के लिए दण्ड विधान
- न्यूनतम मानक के लिए नियम बनाने की शक्ति

ख. नैदानिक अभिलेख अनुरक्षण अधिनियम 2001

- वर्तमान में - अभिलेखों के रख-रखाव के बारे में कोई समरुपता नहीं
- सूचना का खुलासा करने एवं प्रतियों/अभिलेखों की प्रस्तुतीकरण के बारे में कोई नीति नहीं
- सहमति हेतु राज्यों को विधेयक भेजा गया है (न्यूनतम 2 राज्य)
- अभिलेख के रख-रखाव हेतु नैदानिक स्थापना
- ये अभिलेख विहित प्राधिकारी द्वारा निरीक्षण के अध्ययधीन होंगें।
- रोगी अथवा प्राधिकृत समिति अधिप्रमाणित प्रति पाने का हकदार होगा
- ऐसे अभिलेख प्राप्त करने की विहित प्रक्रिया
- इस अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन अपराध होगा
- इस अधिनियम के कार्यान्वयन हेतु केन्द्रीय सरकार नियम बनाएगी।

ग. ठेका श्रमिक (विनियमन एवं उन्मूलन) अधिनियम, 1970

यह अधिनियम ठेका श्रमिकों की सेवा शर्तों के विनियमन हेतु बनाया गया है। यह प्रत्येक ऐसे प्रतिष्ठान अथवा ठेकेदार के लिए लागू है, जो 20 अथवा 20 से अधिक कामगारों की नियुक्ति ठेका श्रमिक के रुप में करता है। इसमें सरकार को यह शक्ति देने का प्रावधान है कि यह किसी संगठन की किसी भी प्रक्रिया, प्रचालन अथवा अन्य कार्य में ठेका-श्रमिक प्रणाली का प्रतिषेध करे।

इस अधिनियम में प्रशासन से उत्पन्न होने वाले मामले पर सलाह देने के लिए केन्द्रीय सलाहकार ठेका श्रमिक बोर्ड और राज्य सलाहकार ठेका श्रमिक बोर्ड की स्थापना की गई है।

प्रमुख नियोक्ता को इस अधिनियम के तहत निबंधन अधिकारी के पास निबंधन कराना है। इसमें ठेकेदारों को अनुज्ञापन(लाइसेंस) के प्रावधानों को भी अनिवार्य बनाया गया है।

इस अधिनियम में ठेका श्रमिक के कल्याण और स्वास्थ्य का भी प्रावधान है। इसमें कतिपय स्थितियों में कैन्टीन और विश्रामालय का भी प्रावधान है। इसमें पेय जल, धुलाई सुविधा, शौचालय

सुविधाओं का भी प्रावधान किया गया है। प्राथमिक चिकित्सा सुविधा के भी प्रावधान किए गए हैं। ठेकेदार को श्रमिकों को मजदूरी के भुगतान के लिए भी उत्तरदायी ठहराया गया है।

अगर ठेकेदार सुविधाएं नहीं उपलब्ध कराता है तो श्रमिकों को सुविधा प्रदान करने के लिए प्र धान नियोक्ता को उत्तरदायी ठहराया जाता है। प्रधान नियोक्ता स्वयं द्वारा किए गए व्यय की ऐसी सुविधाओं के लिए ठेकेदार को भुगतान की जानेवाली किसी राशि में से कटौती करके उगाही करने के लिए प्राधिकृत है।

न्यायालय के विभिन्न फैसले से, स्पष्ट है कि ठेका श्रमिकों के लिए कर्मचारी राज्य बीमा और भविष्य निधि भी लागू है। ठेका अवधि समाप्त होने के बाद, ठेका श्रमिक को नियमित सेवा में नियोजन पाने का कोई अधिकार नहीं है।

घ. ट्रेड (यूनियन) अधिनियम, 1926

इस अधिनियम के बारे में सबसे बड़ा मतिभ्रम यह है कि यह श्रमिक यूनियनों के लिए बनाया गया है। यह सही नहीं है यहां तक कि ट्रेड यूनियन एक्ट के तहत नियोक्ताओं की एसोसिएशन भी पंजीकृत होती है। श्रमिक के अलावा कोई दूसरा व्यक्ति भी यूनियन बना सकता है और इस अधिनियम के तहत इसका पंजीकरण किया जा सकता है।

इस अधिनियम से पंजीकरण समाप्त कराने के बारे में तथा उनके अधिकार एवं देयताओं की शर्तें भी विनियमित होती हैं।

इसमें ट्रेड यूनियनों के पंजीकरण के प्रयोजनार्थ पंजीयको की नियुक्ति का प्रावधान है। इसमें ट्रेड यूनियनों के निबंधन की प्रक्रियाओं का प्रावधान है।

ट्रेड यूनियन बनाने के लिए न्यूनतम 7 व्यक्तियों की जरु रत होती है।

इसमें दो या दो से अधिक ट्रेड यूनियनों को मिलाकर एक यूनियन बनाने का भी प्रावधान है।

इसमें ऐसे विषयों का उल्लेख है, जिनके बारे में ट्रेड यूनियन की निधि से धन खर्च किया जा सकता है। ट्रेड यूनियनों को रजिस्ट्रार को कतिपय आय-व्यय का ब्यौरा भी प्रस्तुत करना होता है। इसमें ट्रेड यूनियनों के पदधारियों को अयोग्य ठहराए जाने संबंधी प्रावधान भी हैं। ट्रेड यूनियन के पदधारियों और सदस्यों को खाता बही और ट्रेड यूनियनों के सदस्यों की सूची की जांच करने का भी अधिकार है।

इसमें रजिस्ट्रार के कुछ कर्त्तव्यों का भी विवेचन है।

1.9 यूनिट समीक्षा के प्रश्न

1. चिकित्सीय-विधिक मामला क्या है? यदि चिकित्सक के पास ऐसे मामले आएं तो चिकित्सक के क्या कर्त्तव्य हैं।

2. किसी चिकित्सीय गवाह के सपीना (सब पोइना) और साक्ष्य के अभिलेख रखने की क्या प्रक्रिया है। एक निपुण गवाह के तौर पर न्यायालय में उसकी भूमिका की वि वेचना करें?

3. मृत्युकालिक कथन क्या है? ऐसा कथन किसके द्वारा और किन परिस्थितियों में रिकार्ड किया जाता है? इसकी कानूनी मर्यादा क्या है?

4. चिकित्सा व्यवसाय के संबंध में विभिन्न साक्ष्यों का वर्णन करें। पेशे की गोपनीयता क्या है और यह विशेषाधिकार प्राप्त सूचना से किस प्रकार भिन्न है?

5. सहमति की परिभाषा दें? विभिन्न चिकित्सा एवं चिकित्सीय विधिक स्थितियों में सहमति की विवेचना करें। सहमति के साथ-साथ आपराधिक मामले में आयु का क्या प्रत्यय संबंध है।

6. ऐसी परिस्थितियों/कारकों के परिप्रेक्ष्य में, जिससे आपराधिक आरोप का शमन होता हो और इसे आधार बनाने के लिए चिकित्सा-विधिक जाँच के संदर्भ में आपराधिक आरोप की विवेचना करें?

7. न्यायालय एवं न्यायिक मामले के संदर्भ में चिकित्सा प्रशासन के दायित्व की वि वेचना करें?

8. विभिन्न स्थितियों में विभिन्न चिकित्सा प्रमाणपत्रों के लिए कानूनी प्राधिकारियों की अपेक्षाओं की विवेचना करें।

9. अस्पताल के कर्मचारी और उनके प्रशासन के संबंध में विविध कानून की संक्षिप्त वि वेचना करें।

10. वैयक्तिक मूल कानून क्या है? त्वरित मुआवजा देने के मामले में अपकृत्य की वर्तमान स्थिति क्या है? चिकित्सा व्यवसाय से जुड़े व्यक्तियों के लिए इन स्थितियों में बचाव पक्ष क्या है?

11. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम क्या है और निजी प्रैक्टिस करने वाले तथा अस्पतालों में कार्यरत चिकित्सकों के लिए इसका क्या महत्व है?

1.10. संस्तुत पुस्तकें एवं संदर्भ साहित्य

1. पंजाब मेडिकल मैनुअल द्वितीय संस्करण, चिकित्सा विभाग, पंजाब सरकार, सरकारी मुद्रण, पंजाब (1933)
2. गौड़ श्री हरि सिंह पीनल लॉ ऑफ इन्डिया चार खंडों में - लॉ पब्लिशर्स, इलाहाबाद
3. खेरा, आर.सी., दिल्ली हाई कोर्ट खल्स प्रैक्टिस एण्ड प्रोसिजर, एलाइड बुक कंपनी, गोखले मार्केट, दिल्ली (1994)
4. दंड प्रकिंया संहिता पांच खंडों में, लॉ पब्लिशर्स, इलाहाबाद
5. मुथुस्वामी एण्ड बृंदा - स्वामीज कम्प्लीट मैनुअल और इस्टैब्लिशमेंट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन फॉर सेन्ट्रल गवर्नमेंट ऑफिसर्स, 5वां संस्करण - स्वामी पब्लिशर्स (प्र ाा.) लि. मद्रास 28 (1994)
6. कौशल अनुप, के.अरोड़ा , मनीष एण्ड कुमार, रोजीः यूनिवर्सल्स प्रैक्टिस गाइड टू कन्ज्यूमर प्रोटेक्शन लॉ, यूनिवर्सल बुक ट्रेडर्स (1995)
7. लीगल आस्पेक्ट्रस ऑफ मेडिसिन इन्क्लूडिंग कार्डियोलोजी, पल्योनरी मेडिसिन एण्ड क्रिटीकल केयर मेडिसिन संपादक - जे.आर.बनिआन्ना, आर.सी.बोस और इ.के.कसौफ 3 स्प्रिंगर वलीग (1989)
8. मोदी मेडिकल जुरिसपुडेंस एण्ड टॉक्सोलोजी, 21वां संस्करण, संपादक -सी.ए.प्र फैंकलिनः एन.एम त्रिपाठी (प्रा.) लि. (1990)
9. राव, वाई.एच.राव, वाई आरः एक्सपर्ट एविडेंस (मेडिकल एण्ड नॉन-मेडिकल), दूसरा संस्करण - वधवा एण्ड कम्पनी, आगरा (1961)
10. नार्कोटिक्स ड्रग्स एण्ड साइकोट्रोपिक सब्सटान्सेज एक्ट, 1985, विद रुल्स, शौर्ट नोट्स एण्ड नोटिफिकेशन्स - इस्टर्न बुक कंपनी, लखनऊ
11. इन्डिया एवेडेन्स एक्ट, विद शौर्ट नोट्स एण्ड नोटिफिकेशन्स, इस्टर्न कंपनी, लखनऊ
12. मेहता, होमी शापुरजी एण्ड तारपोडवाला, बी.जे. मेडिकल लॉ एण्ड एथिक्स इन इन्डिया, कोठारी बुक डिपो (1963)
13. ऑल इन्डिया सर्विसेज मैन्युअल, पार्ट-I, कार्मिक लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय (कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग) नई दिल्ली, भारत सरकार, मुद्रणालय, दिल्ली
14. हैन्डबुक फॉर पर्सनेल ऑफिसर्स, कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय(कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग) नई दिल्ली, भारत सरकार, मुद्रणालय, दिल्ली(1993)
15. मेडिकल कांउसिल ऑफ इन्डिया दिल्ली प्रकाशन
    i. कोड ऑफ मेडिकल एथिक्स
    ii. मिनिमम स्टैन्डर्ड रिक्वायरमेंट फॉर मेडिकल कॉलेज्स
16. द मेडिकल प्रोफेशन एण्ड द लॉ - संपादक - डा.आर.डी.लेले - सज्जन सन्स , बम्बई (1992)

यूनिट - 2 चिकित्सा-विधिक मामले एवं विधिक दायित्व

संरचना

2.1 उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 चिकित्सा विधिक मामले
  2.3.1 चिकित्सा-विधिक मामलों का रजिस्ट्रेशन
  2.3.2 मेडिकल प्रैक्टिशनर के चिकित्सीय-विधिक दायित्व
  2.3.3 चिकित्सा-विधिक राय एवं विधिक संवीक्षा
2.4 मृतक रोगी
2.5 सामान्य चिकित्सीय विधिक समस्याएं
2.6 अस्पताल प्रशासन-कानूनी मुद्दे
  2.6.1 आपातकालीन सेवा-उच्चतम न्यायालय के मार्गनिर्देश
  2.6.2 चिकित्सा-अभिलेख के विधिक पहलू
  2.6.3 चिकित्सा प्रमाणपत्र-विधिक पहलू
2.7 समीक्षाधीन प्रश्न
2.8 संस्तुत पठन/संदर्भ

2.1 उद्देश्य

इस यूनिट के अध्ययनोपरांत आप विधिक चिकित्सीय-मुद्दे और इनसे निपटने के क्रम में किए जाने वाले उपाय समझ पाएंगे।

2.2 प्रस्तावना

चिकित्सक द्वारा चिकित्सीय-विधिक कर्तव्यों का निर्वहन विशेष चुनौतीपूर्ण है क्योंकि इसमें चिकित्सक वकील और एक पुलिस अधिकारी के कौशलों का सम्मिलन होता है। चिकित्सक की चिकित्सा-विधिक भूमिका की कोई नियत सीमा नहीं है। किसी चिकित्सीय विधिक मामले की पहचान करना रोगी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का रिकार्ड रखना, रोगी द्वारा पुलिस को दिए गए बयान का सत्यापन, पुलिस बुलाना इत्यादि से जहां एक ओर चिकित्सक की भागीदारी अहम् है वहीं उतनी ही नाजुक भी है।

अभियोग लगाने से पहले और किसी व्यक्ति विशेष को आरोप मुक्त किया जाए अथवा सजा दी जाए इसका भी निर्णय करने से पूर्व, अन्वेषक और निर्णायक अवश्यमेव ही चिकित्सीय साक्ष्य पर निर्भर रहते हैं। चिकित्सीय एवं वैज्ञानिक ज्ञान के बेईमानी से प्रयोग करने से न केवल निवर्तमान अपराधी की तलाश शुरु हो जाएगी अपितु इसके फलस्वरुप वास्तविक दोषी बच भी सकता है। इसलिए अगर अपराध छिप जाता है अथवा निर्दोष व्यक्ति को दोषपूर्ण चिकित्सा-साक्ष्य के कारण

फंसाया जाता है तब इससे पुलिस, न्यायपालिका और विभागीय उच्च पदस्थ व्यक्तियों की मर्यादा भी धूमिल होगी।

विद्वान अभियोजक और बचाव पक्ष के वकीलों के बीच न्यायिक बहस के दौरान चिकित्सीय मामले की खिंचाई के विविध निर्वचन से धारणाओं में विभेद का उजागर होना निश्चित है। ऐसे चिकित्सीय विधिक विवादों में यह सिद्ध करना और भी चुनौती भरा कार्य है कि नीतिगत अथवा चिकित्सीय-विधिक कर्तव्यों का कोई उल्लंघन नहीं हुआ है अथवा किसी प्रकार की त्रुटि जानबूझकर अथवा किसी आश्य से नहीं की गई है। इससे थोड़ा अधिक दुष्कर कार्य चिकित्सा क्षेत्र से परे के व्यक्तियों को अपनी बात समझाना है। इसलिए इससे चिकित्सीय विधिक कर्तव्य की प्रकृति नाजुक हो जाती है और यह तलवार की धार पर चलने जैसा है।

अपने मन मुताबिक वांछित चिकित्सीय-विधिक परिणाम पाने के लिए अनुरोध, दबाब, धमकी और प्रोत्साहन राशि के बढ़ते हुए चलन के फलस्वरुप अनावश्यक चिकित्सीय विधिक जांच और पुर्नजांच की जाती है। अस्पताल के प्रशासक के लिए इससे भी अधिक चुनौतीपूर्ण कार्य चिकित्सीय ि वधिक कार्य को पक्षपात से पृथक रखते हुए इष्टतम चिकित्सीय विधिक माहौल सुनिश्चित करना है।

इस प्रकार न केवल चिकित्सीय विधिक कार्य करने वाले चिकित्सक अपितु अस्पताल के प्र ाशासकों को भी चिकित्सीय विधिक प्रक्रियाओं एवं कानून में निपुण होना चाहिए।

2.3 चिकित्सीय-विधिक मामले

चोट अथवा बीमारी का कोई भी मामला जिसमें कोई आपराधिक गतिविधि शामिल हो चिकित्सीय विधिक मामला(एम.ए.एस.सी.) कहा जाता है। ऐसी विधिक मान्यता है कि चिकित्सा अधिकारी एस.एस.सी की पहचान करने में सक्षम है। रोगी द्वारा प्रस्तुत किए गए ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और जाँच निष्कर्ष के आधार पर चिकित्सा विधिक पक्ष का अभिनिर्णय किया जाता है। यदि तथ्यात्मक (वास्तविक) कहानी या विवरण उपलब्ध हों तो ऐसा निर्णय लेना कठिन नहीं होता है। रोगी अपने पारिवारिक सदस्य/दोस्त द्वारा अस्पताल लाया जा सकता है अथवा वह स्वयं चिकित्सक के समक्ष उपस्थित हो सकता है। किसी चिकित्सीय विधिक मामले की परिभाषा ऐसी चोट अथवा रोग के ि वषय में दी जाती है जहां इलाज करने वाला डाक्टर रोगी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और नैदानिक जांच करने के बाद ऐसा समझता है कि देश में प्रकृत कानून के अनुसार मामले के बारे में जिम्मेदारी तय करने के लिए प्रवर्तनकारी एजेंसियों द्वारा कोई कानूनी जाँच की जानी चाहिए।

किसी मामले का अपराध संज्ञेय अथवा असंज्ञेय हो सकता है। असंज्ञेय अपराध से कोई ऐसा अपराध अभिप्रेत है, जिसमें पुलिस अधिकारी को बिना वारंट के गिरफ्तार करने का कोई अधिकार नहीं है, इसमें साधारण चोट शामिल है। संज्ञेय अपराध ऐसे अपराध हैं, जिसमें पुलिस अधिकारी द्वारा वारंट के बिना गिरफ्तारी की जा सकती है। ऐसे अपराध संगीन प्रकृति के होते हैं और इनमें कत्ल के मामले, आग लगने के कारण मृत्यु, गंभीर क्षति एवं जानलेवा घाव आदि शामिल हैं।

जब कभी भी किसी व्यक्ति को प्राथमिक उपचार के लिए अस्पताल लाया जाता है अथवा वह अस्पताल आता है, पुलिस की सूचना और पुलिस में मामला दर्ज कराए बिना ही उसका तत्काल इलाज किया जाना चाहिए। इसकी सूचना बाद में भी दी जा सकती है। उच्चतम न्यायालय ने बार-बार इस फैसले को दुहराया है कि कानूनी औपचारिकताएं करने से पहले इलाज करने को प्र ाथमिकता दी जानी चाहिए और ऐसा करने में यदि चिकित्सक अपने विधिक कर्तव्यों के निर्वहन में ि वफल रहता है तो इसके लिए उसे जिम्मेदार नहीं ठहराया जाना चाहिए। यदि रोगी की हालत इतनी गंभीर है कि किसी भी तरह की देरी करने से उसकी जान जा सकती है तो उसे जहां कहीं भी आपातकालीन चिकित्सा सुविधा उपलब्ध हो, वहां तत्काल पहुँचाया जाना चाहिए, उसके बाद उपलब्ध ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का उल्लेख करते हुए रिपोर्ट, सरसरी तौर पर जांच के परिणाम और सर्जिकल/ वृहत जांच और इलाज के लिए (गहन चिकित्सा कक्ष) यूनिट भेजे जाने संबंधी तथ्य की रिपोर्ट करनी चाहिए।

चिकित्सक के पास लाया जाने वाला चिकित्सीय विधिक मामला अक्सर संघर्ष, दुर्घटना, जलने से घायल रोगियों का होता है। हालांकि अन्य मामले जैसे जहर देने, आत्महत्या की कोशिश, बलात्कार आदि संबंधी मामले भी लाए जाते हैं। इलाज करनेवाले चिकित्सक की ड्यूटी में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बारे में कार्बन प्रति में उल्लेख रोग का विवरण, अन्य ब्यौरे जैसे रोगी को लानेवाले व्यक्ति का पता इत्यादि सहित जांच के परिणामों सहित वृहत विवरण तैयार करना शामिल है। जब तक रोगी अचेत नहीं हो, उसकी सहमति ली जानी चाहिए। अपराधिक यदि कोई हो उसे सिद्ध करने के लिए साक्ष्य प्राप्त करने के उद्देश्य से रोगी की इच्छा के विरुद्ध भी जांच की जा सकती है।

2.3.1 चिकित्सीय-विधिक मामले दर्ज करना

क. एम.एल.एसी. दर्ज करना

शीघ्रातिशीघ्र मामले को दर्ज करना विशुद्धरुप से इलाज करने वाले डाक्टर की ही जिम्मेदारी है। यदि कोई देरी होती है तब बाद में किसी समय में मामले को चिकित्सीय दृष्टि से कानूनी बनाया जा सकता है। चिकित्सक का मुख्य कर्तव्य चीजों का ठीक से अवलोकन करके रिकार्ड रखना है। मामले को चिकित्सा की दृष्टि से कानूनी नहीं ठहराए जाने के बारे में रोगी (रोगियों/परिचर(परिचरों) के अनुरोध को नहीं माना जाना चाहिए, इलाज करने वाले चिकित्सक को स्वयं निर्णय लेना चाहिए।

यद्यपि निजी प्रैक्टशनरों के पास अपने रोगियों के चयन का विकल्प होता है, तथापि, सभी चिकित्सक नैतिक तौर पर आपातकालिक रोगियों की सेवा करने के लिए बाध्य हैं। हालांकि सरकार द्वारा नियोजित चिकित्सक के पास रोगियों के चयन का कोई विकल्प नहीं होता है और वह किसी चिकित्सा विधिक मामले को अस्वीकार नहीं कर सकता है।

किसी भी अस्पताल/औषधालय/क्लीनिक पहले से ही दर्ज किए गए विधिक कानूनी मामले और जिसे दूसरे अस्पताल में भेजा गया हो नए सिरे से चोट संबंधी रिपोर्ट तैयार करने की कोई आ

वश्यकता नहीं है। इस मामले को चिकित्सा विधिक (मेडिको-लीगल) मामला कहा जा सकता है और चिकित्सा विधिक (मेडिको-लीगल) फॉर्म के साथ रैफरल पर्ची संलग्न की जानी चाहिए।

ख. चिकित्सीय-विधिक की श्रेणी में रखे जाने वाले मामले

यद्यपि यह विस्तृत नहीं है, लेकिन मार्गदर्शी सिद्धान्त के रुप में निम्नांकित मामले को चिकित्सीय रुप से विधिक मामले की श्रेणी में रखा जाना चाहिएः

- सड़क के किनारे होनेवाली दुर्घनाएं, कारखानों में होने वाली दुर्घनाएं अथवा कोई अन्य अस्वाभाविक दुर्घटना
- किसी वजह से जलने अथवा शारीरिक चोट
- हत्या अथवा आत्महत्या की कोशिश सहित संदेहास्पद अथवा प्रामाणिक मानव वध अथवा आत्महत्या
- संदेहास्पद अथवा प्रामाणिक विषपान
- घायल होने के ऐसे मामले, जहां किसी अनुचित गतिविधि की शंका हो, यदि चिकित्सक ऐसा समझता है कि रोगी किसी अपराध का अभियुक्त अथवा शिकार है।
- ऐसी चोट, जिसमें निकट भविष्य में मृत्यु होने की आशंका हो
- संदेहास्पद अथवा प्रामाणिक आपराधिक गर्भपात
- अचेतन की अवस्था, जब चेतना शून्य होने का कारण ज्ञात नहीं हो।
- संदेहास्पद अथवा प्रामाणिक यौन अपराध
- बिना किसी खास पूर्व घटनाक्रम के लाया गया शव
- न्यायालयों द्वारा भेजे गए मामले

(ग) नीतियों/विधि प्रवर्तनकारी एजेंसी को भेजी गई सूचना

इलाज करने वाले चिकित्सक को यथाशीघ्र चिकित्सीय दृष्टि से कानूनी मामले की जानकारी पुलिस को देनी चाहिए, इसमें इस बात का ध्यान नहीं रखा जाएगा कि एम.एल.सी अस्पताल में रजिस्टर्ड/प्रविष्ट हुआ है अथवा नहीं। आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 39 के तहत, इलाज करने वाला चिकित्सक कानूनी तौर पर पुलिस को सूचित करने के लिए बाध्य है, जिसमें विफल रहने पर भारतीय दंड संहिता की धारा 201 के तहत उसके विरुद्ध, अभियोजन कार्यवाही की जा सकती है।

सभी निजी प्रैक्टिश्नरों को सलाह दी जाती है कि अपने पास स्थानीय पुलिस स्टेशन का टेलीफोन नम्बर रखें और अपने अभिलेख (रिकार्ड) के लिए पुलिस द्वारा दी गई डायरी संख्या लिख लें। यदि कोई स्थानीय पुलिस थाना डायरी नम्बर नहीं देता है, तब पुलिस नियंत्रण कक्ष से इसे सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

2.3.2 मेडिकल प्रैक्टिशनर की चिकित्सीय-विधिक जिम्मेवारी

यथा उपरवर्णित रुप में चिकित्सीय विधिक मामले से निपटने के क्रम में रजिस्टर्ड मेडिकल प्रैक्टिशनर की कुछ जिम्मेदारियां होती हैं, जो निम्नानुसार हैं :

दस्तावेज साक्ष्य का अनुरक्षण

केस सीट, एक्स रे फिल्म, अन्वेषण प्रतिवेदन सहित सभी दस्तावेजों को संभालकर रखा जाना चाहिए। इसी तरह, घायल व्यक्ति द्वारा पहने गए परिधान और अस्पताल में उतारे गए वस्त्रों को भी संभालकर रखना चाहिए। व्यक्ति के शरीर से निकाले गए गैस्ट्रिक लैकेज, गोली, पेलेट, हथियारों को मुहरबंद कवर में पुलिस को भेजा जाना चाहिए। उदाहरणार्थः (I) छूरा घोंपने के मामले में पीड़ित व्यक्ति के वस्त्र जिस पर कटने का निशान दिखता हो (जिससे कत्ल किया गया) इसे घेर देना चाहिए आप विधिवत् हस्ताक्षर करके मुहरबंद कवर में पुलिस को भेजा जाना चाहिए। (II) जहर देने के मामले में, उल्टी, गैस्ट्रिक की उल्टी के द्रव को किसी खास बर्तन में जमा कर इस पर लेबल लगाकर बंद कवर में भेजा जाना चाहिए।

याद रहे कि ऐसे सभी मामलों में उक्त सामग्री भेजने के पश्चात पुलिस/विधि-प्रवर्तनकारी एजेंसियों से उचित रसीद प्राप्त की जानी चाहिए। जनांकिकी संबंधी जानकारी, यथा, नाम, आयु एवं अन्य विवरण का उल्लेख भी निरपवाद रुप से दिया जाए।

चिकित्सा-विधिक मामले में राय देना

अक्सर यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष है किन्तु कभी कभी इसे सरसरी तौर से लिया जाता है। इलाज करने वाले चिकित्सक को बताना पड़ता है कि घाव साधारण है या गंभीर। यह किसी भोकरे हथियार से या तेज हथियार से वार करने के कारण हुआ है या यह जहर देने का मामला है। भारतीय दंड संहिता की धारा 320 में बताया गया है कि कौन सा मामला गंभीर है। अन्य(बाकी) चोट का वर्गीकरण साधारण के रुप में किया जाता है। किन्तु संख्या 8 के तहत कोई ऐसी चोट, जिससे जीवन को खतरा होता है अथवा जिससे व्यक्ति को 20 दिन तक शारीरिक दर्द झेलना पड़ता है और अपने साधारण कामकाज न करने में सक्षम नहीं रहता है इसमें छाती, पेट और खोपड़ी छेदने वाला दर्द कहा जा सकता है (संपीड़न यथा उल्टी) अचेतन, ऊपरी भाग में जलन (78%) को दर्शानेवाली सिर की चोट और 50 प्रतिशत से अधिक गंभीर जलन आदि को इसमें शामिल किया जा सकता है। कोई व्यक्ति जिसे बुरी तरह पीटा गया है और उसके पूरे शरीर में चोट हो, तो ऐसी स्थिति में उसे गंभीर कहा जा सकता है यदि उसे 20 दिन तक दर्द रहता है।

कुछ अन्य शब्दावली

कोई ऐसी चोट जिससे जीवन खतरे में पड़ जाता है उसे चोट (इन्जरी) कहा जाता है जिसके लगने के 24 घंटे के भीतर अचानक मृत्यु हो सकती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि अस्पताल में 20 दिन से अधिक समय तक भर्ती रहना गंभीर चोट की श्रेणी में नहीं आएगा।

जीवन के लिए खतरा उत्पन्न करने वाली चोट
खतरनाक चोट - कोई चोट, जिससे जीवन के लिए खतरा उत्पन्न होने की आशंका होती है, उसे खतरनाक चोट कहा जाता है और यह गंभीर चोट का हिस्सा है।
आमतौर पर मृत्यु होने के लिए पर्याप्त चोट को चोट की परिभाषा दी जा सकती है जिसका प्रत्यक्ष असर घातक चोट की संज्ञा ऐसी चोट को दी जा सकती है जिससे उबर पाना असंभव हो जैसे सिद्ध का कट जाना अथवा इसमें पूर्ण चोट, कमर के निचले हिस्से तक दोनों पैरों का कट जाना, छाती या पेट का पूर्णतः कुचल जाना।

यदा कदा चिकित्सकों द्वारा चोट लगने के समय के साथ-साथ यह भी बताना जरुरी है कि ऐसा अक्सर हुआ, या आत्महत्या अथवा जान लेवा हमला था, ऐसे में उन्हें उचित निर्णय एवं दक्षता का प्रयोग करना चाहिए, उदाहरणार्थ यदि रोगी में किसी प्रकार के फ्रेक्चर अथवा हड्डी के विस्थापन होने की शंका हो, तो एक्स रे का आदेश अवश्य देना चाहिए। यदि चोट लगने के कुछ ही दिन बाद चोट की जांच की जाती है तब तत्कालिक राय को स्थगित कर दिया जाए और अवलोकन करना चाहिए। रोगी को 2-3 सप्ताह के बाद देखा जाना चाहिए और अन्तिम राय दी जानी चाहिए। इसी प्रकार, पर्याप्त समय के बाद ही चोट लगने के बारे में राय दी जाए।

मृत्यु होने के दशा में राय

किसी रोगी को मृत अवस्था में अस्पताल लाया जा सकता है अथवा किसी चिकित्सक के पास ऐसा केस आ सकता है, जहां व्यक्ति की पहले ही मृत्यु हो चुकी है। दूसरी ओर व्यक्ति की अस्पताल में भर्ती होने पर मृत्यु हो सकती है। सरकारी सेवक होने के नाते चिकित्सा अधिकारी किसी गैर-जमानती अपराध करने अथवा करने के आशय की सूचना देने के लिए बाध्य है। उसे अस्वाभाविक मृत्यु संबंधी सूचना प्राप्त होने पर अथवा किसी संदेहास्पद परिस्थिति में अथवा किसी शव के बारे में ऐसा संदेह होने पर कि इसके विरुद्ध गैर-जमानती अपराध का मामला बन सकता है (जैसा कि अपराध दंड संहिता की धारा 40 के तहत बताया गया है) की सूचना निकटतम दंडाधिकारी अथवा पुलिस स्टेशन को दे सकता है। यह इस समस्या को कम करने के लिए है कि बड़े चिकित्सीय विधिक मामले को नैमितिक रुप से उस क्षेत्र के थाने द्वारा हैंडल की जाती है जहां दुर्घटना घटती है। जब कोई बाह्य पदार्थ यथा गोलियों को निकाला जाता है इसकी विस्तृत जानकारी केस शीट में ही दी जानी चाहिए और इन वस्तुओं को मुहरबंद करके अंकन के बाद उचित रुप से संबंधित पुलिस अधिकारी को सौंपा जाए। इसमें आशंकित आसन्न खतरे के बारे में पुलिस को पूर्व सूचना देने के बाद ही रोगी को अस्पताल से छुट्टी दी जानी चाहिए। यदि वह महिला/पुरुष फरार हो जाता है अथवा

किसी चिकित्सक से परामर्श लेने के बहाने से चला जाता है, तो इसकी सूचना तत्काल दी जानी चाहिए।

जब डॉक्टर के सामने कोई लाश जाती है तब निम्नलिखित मामलों में पुलिस को सूचित किया जाना चाहिएः

i. जब किसी रोगी को किसी सरकारी अस्पताल के आपातकालिक सेवा वार्ड में लाया जाता है तथा उसकी मृत्यु होती है;

ii. ऐसे सभी मामले जहां यह प्रतीत होता है कि अस्वाभाविक कारण से मृत्यु हुई है और ऐसे सभी मामले जहां चिकित्सक व्यक्ति को लाश आने पर मृत्यु का कारण बताने में अक्षम है। कभी कभी चिकितसक को भी मृत्यु स्थल पर बुलाया जा सकता है, ताकि वह पुरुष/महिला की लाश, वस्त्र आदि की जांच करके अपना विचार व्यक्त कर सके।

आत्महत्या की कोशिश के मामले से संबधित उत्तरदायित्वः कोई भी सरकारी चिकित्सक अपराधिक दण्ड संहित की धारा 40 के तहत आत्महत्या की कोशिश के बारे में सूचित करने के लिए कर्तव्य से बंधा हुआ है जबकि कोई गैर-सरकारी चिकित्सक (फिजिशियन) जो आपराधिक दंड संहिता की धारा 39 के तहत सूचना देने के लिए आबद्ध है, वह गैस्ट्रिक लैवेज अन्तर्वस्तु को तत्काल सील करके और इस पर लेबेल इत्यादि लगा कर इसे अपने पास सुरक्षित रख सकता है और तत्पश्चात आत्महत्या की ऐसी कोशिश की सूचना पुलिस को दे सकता है। तब वह इस प्रकार बचाकर रखी गई सामग्री को पुलिस को दे सकता है ताकि यह जरुरत के समय काम आ सके।

तथापि जब कभी भी आत्महत्या अथवा दूसरे व्यक्ति की हत्या के बारे में शंका हो, पुलिस को सूचित करना बेहतर है क्योंकि पुलिस के पास ऐसे मामले की जांच करने के पर्याप्त साधन उपलब्ध होते हैं। पहले लैवेज को जहर देने के सभी मामले में (जब तक चिकितसीय सिद्धान्त के अनुसार यह प्रतिषिद्ध नहीं हो) गर्म पानी से किया जाना चाहिए और बाहर वापिस आने वाले पदार्थ ि वधिवत ढ़ंग से लेवेल लगाकर इसे सील करके अपने पास सुरक्षित रखना चाहिए ताकि मृत्यु होने पर इसे पुलिस को सौंपा जा सके और भारतीय दंड संहिता की धारा 309/306 के तहत आंतरिक जांच-पड़ताल की जा सके अथवा भारतीय दंड संहिता की धारा 328/272-275 के तहत कोई मामला दर्ज कराया जा सके।

उच्चतम न्यायालय ने अपने हाल ही में दिए गए एक फैसले में आत्महत्या की कोशिश के संबंध में इस धारा को अवैध ठहराते हुए यह प्रावधान रखा है कि आत्महत्या की कोशिश अब कोई आपराधिक हिंसा नहीं है। तथापि, ऐसे अधिकांश मामले जब उनके पास आते हैं तब संदेहास्पद परिस्थितियों को देखते हुए चिकित्सक को हमेशा सलाह दी जाती है कि जब कभी भी ऐसा मामला सामने आए उन्हें पुलिस को सूचित करना चाहिए।

रोगी का कथन रिकार्ड करना : जब रोगी की भर्ती के समय चिकित्सीय विधिक रिपोर्ट तैयार की जाती है, जिसमें उसकी चेतना के स्तर का स्पष्ट उल्लेख किया जाता है, स्थान और व्यक्ति के बारे में पूरी जानकरी देने के साथ-साथ रोगी के साथ आने वाले व्यक्तियों का भी पूरा अता-पता लिखा जाना चाहिए।

मृतक का बयान

यह ऐसे व्यक्ति का लिखित अथवा मौखिक बयान है जो किसी विधि-विरुद्ध/गैर-कानूनी कृत्य के परिणामस्वरुप मर रहा है, इसमें उसकी मौत होने के वास्तविक तथ्य और उससे उत्पन्न परिस्थितियों का उल्लेख होना चाहिए।

मृतक की घोषणा का रिकार्ड रखा जाना : मरने वाले की घोषणा पत्र का रिकार्ड रखना चिकित्सक का उत्तरदायित्व है जिसका प्रबंध संबंधित पुलिस थाने द्वारा अथवा प्रत्यक्ष रुप से (खासकर ऐसे मामले में जहाँ स्थिति गंभीर हो और शीघ्र ही मृत्यु होने की संभावना है) किया जा सकता है।

यदि समय हो, तो घोषणा लिखने के लिए मजिस्ट्रेट को बुलाया जाना चाहिए। बयान का रिकार्ड लिखने से पहले चिकित्सक को प्रमाणित करना चाहिए कि व्यक्ति होश में है और उसकी मानसिक स्थिति सामान्य है। यदि पीड़त व्यक्ति की दशा गंभीर है और मजिस्ट्रेट को बुलाने का समय नहीं है तब दो गवाहों की उपस्थिति में उसे व्यक्ति का प्रख्यापन लेना चाहिए। बयान पुलिस और गाँव का प्रधान अथवा कोई दूसरा व्यक्ति भी ले सकता है। जब मृतक की घोषणा को रिकार्ड नहीं किया जाता है तो इसके पीछे ऐसी मान्यता होती है कि मरने वाला व्यक्ति सच बोल रहा है। बयान उस व्यक्ति के शब्दों में ही लिया जाना चाहिए उसमें किसी भी पद अथवा मुहावरे में किसी प्रकार का बदलाव नहीं किया जाना चाहिए। उल्लेखनीय प्रश्न नहीं पूछा जाना चाहिए। घोषणा करने वाले को बिना किसी अनुचित दवाब, किसी के उकसाने अथवा किसी की मदद के बगैर अपना बयान देने की इजाजत दी जानी चाहिए। यदि कोई प्वाइन्ट स्पष्ट नहीं हो तो इसे स्पष्ट करने के लिए प्रश्न पूछा जाना चाहिए लेकिन वास्तविक प्रश्न और दिए गए उत्तर का रिकार्ड रखना चाहिए तब उसे घोषणा करने वाले को पढ़कर सुनाया जाना चाहिए और उसके हस्ताक्षर अथवा अंगूठे का निशान लिया जाना चाहिए। चिकित्सक और गवाह को घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर भी करना चाहिए यदि घोषणा करने वाले व्यक्ति द्वारा ही बयान लिखा जाता है तो इस पर उसके हस्ताक्षर होने चाहिए। लिखा गया बयान तथ्यपरक होना चाहिए न कि कोई राय। इसी तरह, जब राय अथवा निष्कर्ष के रुप में कोई घोषणा पत्र लिखा जाता है तो रिकार्ड करने वाले व्यक्ति द्वारा इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए प्रश्न पूछा जाना चाहिए कि ये अंतिम निर्णय पर पहुंचाने वाले तथ्य हैं। यदि बयान लिखने के क्रम में घोषणा करने वाला चेतना शून्य हो जाता है तो बयान लिखने वाले व्यक्ति को उस समय तक जितनी जानकारी मिली है उसी पर हस्ताक्षर करने चाहिए। यदि मरने वाला व्यक्ति बोलने में सक्षम नहीं है, लेकिन स्वयं से पूछे गए प्रश्नों के उत्तर पर हस्ताक्षर कर सकता है तो इसे मौखिक बयान के रुप में रखा जा सकता है। यह घोषणा केवल उस व्यक्ति को मारने वाले अभ्युक्त के खिलाफ ही प्रयुक्त नहीं होगा बल्कि इस कृत्यय में संलग्न सभी व्यक्तियों के विरुद्ध लागू होगा जिसके फलस्वरुप मृत्यु हुई। भारत में यदि घोषणा करने वाले व्यक्ति की मानसिक दशा स्वस्थ है

तो इसे साक्ष्य के तौर पर न्यायालय में भी प्रस्तुत किया जा सकता है भले ही घोषणा करने वाला उस समय मरणासन्न क्यों न हो।

घोषणा मुहरबंद लिफाफे में दंडाधिकारी (मजिस्ट्रेट) को भेजी जाती है। इसे न्यायिक जांच के समय प्रस्तुत किया जाता है और सभी फौजदारी एवं दीवानी मामले में पीड़ित व्यक्ति की मृत्यु होने की दशा में साक्ष्य के तौर पर तब स्वीकार किया जाता है जब मृत्यु के कारण का पता लगाया जा रहा हो। घोषणा पत्र लिखने वाले व्यक्ति को इसे सिद्ध करने के लिए न्यायालय में साक्ष्य देना होगा। यदि घोषणा करने वाला व्यक्ति जीवित है तो घोषणा को स्वीकार नहीं किया जाता है और उसकी घोषणा को मौखिक साक्ष्य माना जाता है। अपराधी की पहचान करने के लिए तथा निर्दोष व्यक्तियों को छोड़ने के लिए यह महत्वपूर्ण है।

जहां तक कानूनी स्थिति का संबंध है, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 (1) (द्वारा 11.1.3.1) के तहत ऐसी कोई विधिक अपेक्षा नहीं है कि इसे कौन रिकार्ड करेगा। तथापि आम धारणा यह है कि सर्वप्रथम कोई मजिस्ट्रेट, फिर कोई चिकित्सक तब उसके बाद कोई सरकारी सेवक अथवा कोई ऐसे व्यक्ति की आम सहमति है, जिसका पीड़ित व्यक्ति/घायल से अथवा प्रतिपक्ष से किसी रुप में कोई संबंध नहीं है।

मृतक के बयान

यह किसी व्यक्ति का वह बयान अथवा शपथ है जिसे मजिस्ट्रेट अभियुक्त अथवा उसके वकील की उपस्थिति में रिकार्ड करना है। मेडिकल प्रैक्टिशनर को प्रमाणित करना चाहिए कि गवाह साक्ष्य देते समय स्वस्थ मानसिक दशा में है। इसका महत्व मृतक घोषणा पत्र से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि अभियुक्त को गवाहों की जांच-परख करने का अवसर दिया जाता है। वस्तुतः इसमें रोगी के बिस्तर के बगल में मजिस्ट्रेट द्वारा कोर्ट लगाई जाती है।

मृत्यु की घोषणा और मृतक के पक्ष को रखने में अंतर

		मृतक द्वारा की गई घोषणा	**मृतक के पक्ष का बयान**
1.	कथन	किसी को दिया गया	मजिस्ट्रेट को दिया गया
2.	शपथ	आवश्यक नहीं	आवश्यक
3.	अभियुक्त	उपस्थित नहीं	अभियुक्त अथवा उसका वकील उपस्थित
4.	जिरह	शून्य	अनुमत
5.	महत्व	कम	अधिक

डा. के.एस.नारायण रेड्डी - द इसेंल्सियल्स ऑफ फोरिंसिक मेडिसीन टॉक्सीकोलोजी - आठवां संस्करण 1994

मानसिक स्वस्थता प्रमाण पत्र देना

मजिस्ट्रेट द्वारा घायल व्यक्ति, पुलिस अथवा सरकारी सेवक का बयान लेने से पहले, ड्यूटी पर होने वाले डाक्टर को उनके लिखित अनुरोध पर उस पुरुष/महिला की स्वस्थता संबंधी प्रमाण पत्र देना पड़ता है। रोगी क्यों स्वस्थ नहीं है, अथवा अक्षम है इसका कारण अवश्य लिखना चाहिए जैसे रोगी बेहोश है/नशे की हालत में उस तारीख, समय और स्थान पर है अथवा अचेत है। यह पौराणिक मान्यता है कि सभी सचेत रोगी बयान देने में सक्षम हैं। ऐसा रोगी जिसको पिछली बात याद नहीं रहती है या कोई ऐसा व्यक्ति जो मृगतृष्णा से पीड़ित हो होश में रहता है किन्तु विश वसनीय बयान नहीं दे सकता है। मृगतृष्णा में रहने वाला रोगी खतरनाक होता है जैसे कि किसी धार्मिक मान्यता के तहत सजावार अथवा वेबफाई से पीड़ित है वह किसी को भी गुनहगार ठहरा सकता है। यहां तक कि कोई झूठा व काल्पनिक बयान भी दे सकता है। अतः चिकित्सक को अवश्य सुनिश्चित करना चाहिए कि उस महिला/पुरुष चिकित्सक ने अस्पताल में उपस्थित रोगी की जांच की है। रिकार्ड के लिए इसकी एक प्रति रखना उचित होगा।

विचारणाधीन कैदियों की चिकित्सीय जांच

जब किसी विचारणाधीन रोगी को चिकित्सीय जांच के लिए लाया जाता है तब इस संबंध में लिखित रुप में उचित प्राधिकार होना जरुरी है और जब किसी चिकित्सा अधिकारी को इस आशय का निदेश दिया जाता है जब उसे उस दस्तावेज को संभालकर रखना चाहिए। किसी महिला अभियुक्त के मामले में, किसी महिला रजिस्टर्ड मेडिकल प्रैक्टिशनर की उपस्थिति में उसकी जांच की जानी चाहिए। यदि अभ्युक्त द्वारा आपराधिक दंड संहिता की धारा 54 के तहत दिए गए किसी कानूनी आवेदन पत्र पर जांच की जाती है तो किसी पुलिस अधिकारी अथवा न्यायालय के अधिकारी अथवा न्यायालय द्वारा उसके साथ आने के लिए प्राधिकृत/लगाए गए किसी व्यक्ति को साथ आना चाहिए। ऐसे मामले की जांच की रिपोर्ट में व्यक्त की गई सहमति स्पष्टतः सुनिश्चित होनी चाहिए और उसके बाद साथ जाने वाले अधिकारी द्वारा अभिप्रमाणित हस्ताक्षर किया जाना चाहिए। किसी अन्य मेडिकल लीगल रिपोर्ट की ही तरह इस रिपोर्ट में भी दो पहचान चिह्न दिए जाने चाहिए और इसकी दो प्रतियां बनाई जानी चाहिए जिसमें से एक प्रति रिकार्ड के लिए सुरक्षित रखी जानी चाहिए।

2.3.3 चिकित्सीय विधिक राय एवं विधिक संवीक्षा

जैसा कि पहले बताया गया है, चिकित्सीय विधिक मत सर्वाधिकार महत्वपूर्ण पहलू (पक्ष) है और इसे हल्के रुप में नहीं लिया जाना चाहिए। इसके निम्नांकित कारण हैं :

प्रभावित व्यक्ति के भाग्य का चिकित्सीय-विधिक प्रतिवेदनों और बयानों के आधार पर निर्णय लिया जाता है। इसलिए किसी मामले की जांच/सुनवाई के दौरान विद्वान वकील द्वारा खुली अदालत में व्यापक संवीक्षा की जाती है। किसी प्रकार की त्रुटि या खामी पाने की कोशिश में और चिकित्सीय

जांच को अविश्वसनीय और गैर-भरोसामंद सिद्ध करने के लिए चिकित्सा विज्ञान से संबद्ध व्यक्ति से पूछे जाने वाले प्रश्न हमेशा सामान्य और सुखदायक नहीं होते हैं। मुवक्किल की सहायतार्थ के लिए जानकारी प्राप्त करने के लिए कभी-कभी वकील गुस्से में आ जाते हैं और कुछ ऐसे अजीव प्रश्न करते हैं जो न सिर्फ चिड़चिड़ाहट उत्पन्न करने वाले, उलझनपूर्ण और झकझोर देने वाले होते हैं बल्कि ऐसे प्रश्न भी होते हैं जो आप की विश्वसनीयता पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं।

यदि आपके विचार में ऐसा आभास होता है कि जांच में लापरवाही बरती गई है और प्रश्नों के दिए गए उत्तरों में प्रोफेशनलिज्म में कमी दिखती है और इससे गलत जानकारी मिलती है जो इससे किसी का अपमान हो सकता है और अनभिज्ञतापूर्ण, काल्पनिक आधार पर रिपोर्ट देने से किसी को अनुचित सजा हो सकती है। चिकित्सकीय साक्ष्य स्वीकार्य हो और इससे किसी को दुःख नहीं हो, चिकित्सीय विधिक राय आकस्मिक तौर पर लापरवाही से दिया गया हो और जटिल नहीं होना चाहिए। यह जैव वैज्ञानिक यर्थाथ पूरे आधार पर स्पष्ट एवं बोधगम्य होना चाहिए। यह पक्का और अटूट होना चाहिए तथा विशेषध्यान से कथन दिया जाना चाहिए।

विधिक संवीक्षा की परिभाषा चिकित्सीय विधिक प्रतिवेदन, दस्तावेज, साक्ष्य, राय (रजिस्टर्ड मेडिकल प्रैक्टिशनर द्वारा दिया गया) जो वकीलों द्वारा न्यायालय में दिया जाता है। अपना दावा सिद्ध करने अथवा दूसरे के दावे को झूठा ठहराने के लिए कल्पना शक्ति का प्रयोग किया जाता है और जिस पर वकील किसी मामले विशेष में डाक्टर द्वारा अपने दायित्व के निर्वहन में बरती गई लापर वाही पर प्रश्न चिह्न लगाया जाता है।

बचाव पक्ष के विद्वान वकील द्वारा न्यायालय में चिकित्सीय प्रतिवेदनों की व्यापक जांच ि वभिन्न रुपों में विभिन्न अवसरों पर की जाती है उदाहरण के तौर पर मामले को स्वीकार करते समय, जमानत की अर्जी पर विचार करते समय अथवा अभियुक्त को सजा देते समय अथवा जांच के दौरान मुक्त करते समय अथवा उसे किसी प्रकार की दूसरी राहत देते समय।

उदाहरण के तौर पर किसी बचाव पक्ष के वकील द्वारा किसी जिला एवं सत्र न्यायालय की अदालत में भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के मामले (बलात्कार) में जमानत की अर्जी देते समय यह तर्क दिया जाता है कि यह कैसे माना जा सकता है कि 10 वर्ष की नाबालिग का उसके मुवकि वल के हृष्ट पुष्ट लड़के द्वारा बलात्कार किया गया है जिसके कारण घटना स्थल पर अधिक रक्तस्त्रा व के कारण वह बच्ची बेहोश हो गई थी, जब पीड़िता की मेडिकल रिपोर्ट में (गुप्तांग अथवा गुप्तांग के बाह्य अंगों) पर किसी भी प्रकार की चोट नहीं बताई गई है, जिससे रंक्तस्त्राव हो सके। डाक्टर के रिकार्ड (हिस्ट्री) में लैंगिक सहवास के प्रयास का आरोप लगाया था, जबकि पुलिस के दस्तावेजों में लिखे गए कथन में स्पष्टतः दर्शाया गया था कि यह पूर्णतः लैंगिक कृत्य था। चिकित्सीय प्रतिवेदन को सही मानकर न तो किसी प्रकार की लैंगिक गतिविधि थी और न ही पुलिस की कहानी ही भरोसेमंद थी। जिला एवं सत्र न्यायाधीश ने संदेहास्पद व्यक्ति/अभियुक्त को जमानत दी।

किसी तरीके से इन प्रतिवेदनों पर जिरह की गई वह समान नहीं है और हर मामले में अलग-अलग होती है। अलग-अलग व्यक्ति इसे अपने-अपने नजरिए से देखते हैं। यहां यह उल्लेख

करना प्रासंगिक होगा कि विधिक संवीक्षा का उद्देश्य केवल यह देखना नहीं है कि चिकित्सीय साक्ष्य से मौखिक साक्ष्य की अभिपुष्टि होती है अथवा नहीं अपितु यह भी देखना होता है कि चिकित्सीय अभिमत विश्वसनीय है। चिकित्सीय प्रतिवेदनों, के प्रस्तुतीकरण का महत्व केवल किसी अभियुक्त के दोष अथवा उसके निर्दोष होने को सिद्ध करने के मामले में नहीं, बल्कि यदि स्वयं की संदेहास्पद विश वसनीयता के बचाव के लिए भी है।

विधिक संवीक्षा विभिन्न मामले और स्थितियों में भिन्न-भिन्न होती है, यहां तक कि अलग व्यक्ति और स्थान में भी यह भिन्न-भिन्न होती है किन्तु यह नोट करने योग्य है कि चिकित्सीय दृष्टिकोण से यह आमतौर पर भिन्न होती है।

2.4 लाए गए मृतक रोगी

कई बार रजिस्टर्ड मेडिकल प्रैक्टिशनर के सामने ऐसे रोगी लाए जाते हैं जिन्हें सामान्यतः आपातकालीन विभाग में मृत अवस्था में लाया जाता है। लाए गए मृतकों की मृत्यु हमेशा अस्वाभाविक कारणों से नहीं होती है। स्वाभाविक कारणों से भी मृत्यु हो सकती है। कभी-कभी अस्वाभाविक ढंग से मरे हुए पीड़ितों को भी झूठी कहानी बनाकर लाया जाता है, विशेष रुप से तथा कथित दहेज-प्रथा की पीडिता के मामले में ऐसा होता है। एक नव विवाहिता का शव ननद और सास द्वारा उसे होश में लाने के लिए लाया गया क्योंकि उनके अनुसार उसे घातक बेहोशी का दौरा पड़ा था। लेकिन ड्यूटी पर रहनेवाला सावधान चिकित्सक जिसने मृत घोषित कर दिया उसके गले पर एक गहरे घाव का निशान देखा। मृत वधू के ससुराल वाले फिर भी एक ही बात को दुहराते रहे कि गले पर 1 से.मी. चौड़ा कटे का निशान या तो जन्म से ही था या गले में धागा पहनने की वजह से था।

ऐसे मृतक-शव की प्रविष्टि अवश्यमेव की जानी चाहिए जिन्हें मरा हुआ लाया जाता है और आपातकालीन/बाह्य रोगी विभाग के रजिस्टर में इसकी प्रविष्टि किए बगैर इसे मृतक शव को बाहर ले जाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। यदि उसके द्वारा किसी अपराध के बारे में निर्णय लिया जाना हो तो इसकी सूचना पुलिस को दी जानी चाहिए। शव परीक्षण को दबाने अथवा पुलिस को नहीं सूचित करने के बारे में अक्सर अनुरोध किया जाता है, यह बहुत ही आम बात है लेकिन ऐसे अनुरोध को ठुकरा दिया जाना चाहिए और किसी प्रकार की गड़बड़ी का अंदेशा होने पर इसकी सूचना तत्काल पुलिस को दी जानी चाहिए।

बहुत से लोग शव-परीक्षण कराए जाने में रुचि नहीं रखते हैं। कभी-कभी ऐसा इस वजह से होता है कि उन्हें किसी आपराधिक गतिविधि का अंदेशा नहीं होता है, जबकि कुछ मामले में उन्हें यह ज्ञात होता है लेकिन फिर भी मरणोपरांत शव-परीक्षण नहीं किया जाता है। किसी अति-विशिष्ट व्यक्ति की पुत्री ने जहर खाकर आत्महत्या कर ली और परिवार पर कोई कलंक नहीं आए, इसलिए निरंतर दबाब पड़ता रहा कि पुलिस को सूचित नहीं किया जाए और खाने-पीने के कारण मृत घोषित कर दिया जाए।

जांच बिन्दु

1. क्या हमें लाए गए मृत रोगियों के मामले में आपराधिक कृत्य का संदेह करना चाहिए?

2. क्या प्रशासनिक अधिकारी, राजनीतिज्ञ अथवा किसी प्रभावी व्यक्ति के दबाब में चिकित्सकों को स्थिति से निपटने में कठिनाई होती है तो सुलभ मार्ग अपना लेना चाहिए?

2.5 सामान्य चिकित्सीय विधिक समस्याएं

कभी-कभी, चिकित्सक चिकित्सीय विधिक समस्याओं के बारे में चिन्तित हो जाते हैं, जिससे उन्हें अपने व्यावसायिक जीवन-काल में निपटना पड़ता है। तथापि, यदि आत्मज्ञान स्पष्ट हो और सहायक अभिवृति हो, तो इनमें से अधिकांश चिकित्सीय विधिक समस्याओं को सुगमतापूर्वक निपटाया और हल किया जा सकता है।

सामने आने वाली कुछ सामान्य समस्याएं निम्नानुसार हैं :

न्यायालय से प्राप्त सम्मनः यद्यपि आमतौर पर चिकित्सकों में सम्मन न लेने की प्रवृति होती है लेकिन यह गैर कानूनी है और इससे बचना चाहिए। यह हमारा विधिक संवैधानिक और नैतिक कर्तव्य है कि न्याय देने में हम न्यायालय की मदद करें और हमें इससे पीछे नहीं हटना चाहिए। अगर डाक्टर के समक्ष किसी प्रकार की समस्या हो, तो उसे न्यायाधीशों के नोटिस में लाया जाना चाहिए, जो आम तौर पर यथार्थ व वस्तुपरक समस्या के प्रति सहनूभूतिपूर्वक रवैया अपनाते हैं।

मृत्क व्यक्ति की अभिरक्षा (कस्टडी) - यदि कैज्वल्टी (वार्ड) में चिकित्सीय विधिक मामले से संबद्ध किसी रोगी की मृत्यु हो जाती है तो उसके शव को तब तक संभालकर रखा जाना चाहिए, जब तक कि उचित तौर पर इसका निपटान नहीं हो जाए। यदि संभव हो, तो कैज्वल्टी के पास एक कक्ष होना चाहिए जहां शव को शवगृह में ले जाने से पूर्व पुलिस को सौंपे जाने के प्रयोजनार्थ अस्थायी तौर पर रखा जाना चाहिए।

ऐसे चिकित्सीय विधिक रोगियों के शव, जिसकी मृत्यु अस्पताल में भर्ती के समय हुई, शव गृह में भेजा जाना चाहिए जहां से इसे पुलिस अथवा सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट को सौंपा जाना चाहिए। रोगी के रिश्तेदारों को सूचित किया जाना चाहिए और मृत्यु प्रमाण-पत्र की एक प्रति रोगी के केस सीट में अस्पताल में रखी जानी चाहिए।

कुछ अस्तपालों में, अंतिम बिल (शुल्क) के भुगतान होने तक मृतक शरीर को नहीं सौपा जाता है। इसलिए यदि रिश्तेदार बिल का भुगतान नहीं करते हैं तो मामला और भी जटिल हो जाता है। इस बारे में उच्चतम न्यायालय का निदेश है कि किसी भी स्थिति में मृतक शरीर को नहीं रोका जा सकता है। इसे रिश्तेदारों को सौपा जा सकता है और यदि प्रभारों (शुल्क) की अदायगी नहीं की जाती है तो कानूनी कार्रवाई करके इसकी वसूली की जानी चाहिए।

डिस्चार्ज किए गए रोगी द्वारा अस्पताल परिसर छोड़ने पर राजी नहीं होनाः

कभी-कभी, ऐसी विचित्र स्थिति उत्पन्न हो जाती है जब रोगी डिस्चार्ज होने पर बिस्तर छोड़कर अस्पताल से बाहर जाने के लिए राजी नहीं होता है। ऐसे मामले में, निम्नलिखित मार्गनिर्देशों का ध्यान रखना चाहिए। यदि रोगी टर्मिनल है (अर्थात यदि वह असाध्य रोग कैंसर, एच.आई.वी आदि) से पीड़ित है तो रिश्तेदारों को तथ्यों की जानकारी देनी चाहिए और रोगी को घर ले जाने का अनुरोध करना चाहिए। अगर वे रोगी को घर नहीं ले जाते हैं, तब बिस्तर खाली कराने के लिए कोई बल प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए और रोगी को किसी दूसरी जगह शिफ्ट करा देना चाहिए। यदि किसी तरह रोगी पूरी तरह ठीक हो जाता है और स्वयं की देखभाल करने में शारीरिक तौर पर सक्षम हो जाता है, तब रिश्तेदारों को रोगी को वापिस ले जाने का निदेश देना चाहिए। अंतिम उपाय के रुप में, रोगी को जबरन हटाने के लिए पुलिस भी बुलाई जा सकती है, अस्पताल के कर्मचारियों को स्वयं ऐसा नहीं करना चाहिए।

गंभीर रोगियों को डिस्चार्ज करने का अनुरोध करना कभी-कभी, ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है कि किसी गंभीर अथवा अचेत रोगी/परिचर कोई दलील देकर रोगी को डिस्चार्ज करने का अनुरोध करते हैं। डाक्टर को प्रत्येक अनुरोध के गुण दोष का निर्णय करने के बाद निम्नांकित दिशानिर्देश का पालन करना चाहिए।

यदि रोगी बहुत गंभीर है और अचेतन अवस्था में है और जाना चाहता है तब रोगी से यह लिखा होने के बाद अनुरोध पर डिस्चार्ज किया जा सकता है कि वह महिला/पुरुष चिकित्सीय सलाह के विरुद्ध जा रहा/रही है। यदि रोगी गंभीर है लेकिन जाना चाहता है तब उसके संबंधियों को वैकल्पिक व्यवस्था करने के लिए कहा जाना चाहिए। केश शीट पर रोगी/परिचर द्वारा यह रिकार्ड किया जाना चाहिए कि वे डाक्टर की सलाह के विरुद्ध यह काम कर रहे हैं और रोगी की जिम्मेवारी उनके ऊपर होगी।

यदि रोगी बहुत गंभीर और अचेत है तो अस्पताल से हटाए जाने पर उसकी मृत्यु की आशंका है, तब डिस्चार्ज नहीं किया जाना चाहिए और यदि आवश्यक हो, तो रिश्तेदार/परिचरों को रोकने के लिए पुलिस बुलाई जानी चाहिए।

2.6 अस्पताल का प्रशासन - विधिक मुद्दे

पिछले चिकित्सीय विधिक परिदृश्य से हटकर वांछित चिकित्सीय विधिक परिणाम की तरफ झुकाव बढ़ा है। इसी अनुपात में डाक्टर के ऊपर दबाव, धमकी, खतरा, शिकायत और अदालती आदेश से तेजी से और वांछित रुप में कार्य कराने के मामले भी बढ़े हैं। जहां एक ओर आसानी से झुकने वाले और अत्यधिक लचीले अस्पताल प्रशासक जो राजनीतिक अथवा अफसरशाही के दबाब में आ जाते हैं, उनके द्वारा चिकित्सीय विधिक शोषण होता है, वहीं दूसरी ओर कुछ ऐसे प्रशासक हैं, जो बहुत कठोर हैं और इस बारे में उनमें संतोषप्रद जागृति नहीं है। इससे पहले कभी भी अस्पताल प्र

ाशासक की चिकित्सीय विधिक भूमिका इतनी नाजुक और निर्णायक नहीं रही है जितनी अब है। उनके उपर उचित विधिक चिकित्सीय संस्कृति लाने की प्राथमिक जिम्मेदारी केवल रोगियों का हित सुनिश्चित करने के लिए ही नहीं, बल्कि जांच को सही मार्ग पर लाने के प्राथमिक उद्देश्य को पूरा करने के लिए भी है। साथ ही यह भी देखना है कि डॉक्टर को अनावश्यक आपराधिक प्रताड़ना न झेलनी पड़े।

अस्पताल प्रशासक के सामने प्रमुख चुनौती यह सुनिश्चित करना है किः

1. स्वयं पीड़ित अथवा स्वयं पर किए गए वार अथवा ऐसे मामले, जिसमे कोई क्षति नहीं हुई हो, ऐसे मामले में चिकित्सीय विधिक जांच की अनुमति केवल पुलिस के अनुरोध अथवा न्यायालय के आदेश पर ही दी जानी चाहिए।
2. चिकित्सीय विधिक मामलों को केवल लिया ही नहीं जाता है बल्कि अनावश्यक रुप में इन्हें वार्ड में देर तक रोका भी नहीं जाता है। छोटी-छोटी वजह से देर करने की प्रैक्टिस समाप्त की जानी चाहिए।
3. चिकित्सीय विधिक मामले में, उसी दिन एक्स रे रिपोर्ट दी जाती है। इसकी एक प्रति अि वलम्ब संबंधित चिकित्सक को भेजी जानी चाहिए।
4. रोगियों को नसीहत देकर दिग्भ्रमित करने वालों के साथ सख्ती से निपटा जाना चाहिए।
5. इस कहावत के अनुसार ष्जहां समय पर बोलना हमारा कर्तव्य है वहीं चुप्पी साध लेना अपराध है'' किस प्रकार की क्षति हुई है, इसकी घोषणा का प्रतिवेदन तैयार किया जाना चाहिए।
6. बेईमान,अक्षम और अविश्वसनीय कर्मचारियों को चिकित्सीय विधिक कार्य से दूर रखा जाना चाहिए।
7. वांछित परिणाम प्राप्त करने हेतु पुनर्जांच की मांग की जाती है ताकि वे कहीं पुनः जांच करने वाले व्यक्ति कुछ मुद्दों पर चुप्पी साधकर अथवा घाव बढ़ाकर क्षति/चोट को बढ़ाने जैसा कार्य नहीं करें, पुनः जांच का उद्देश्य या पुन जांच की मूल वजह का स्पष्टीकरण होना चाहिए। उदाहरण के तौर पर यदि पुनः जांच का आग्रह इसलिए किया जाता है कि क्षति का उल्लेख नहीं हो पाया था तो यह पूछा जाना चाहिए कि क्या डाक्टर से ऐसी चोट का उल्लेख करना आवश्यक था अथवा नहीं था? क्या चिकित्सीय विधिक जांच के समय रोगी द्वारा यह नहीं बताया जा सकता था।
8. चोट की प्रवृति पर चिकित्सीय विधिक राय के मामले में, दो तरह की स्थिति होती है, पहली ऐसी स्थिति है जहां चोट की प्रवृति निर्धारित करने के लिए न तो एक्स-रे ना ही अवलोकन की अवधि ही अपेक्षित होती है। न तो पहली स्थिति में राय को लंबित रखना चाहिए ना ही किसी व्यक्ति को ऐसी स्थिति में इसकी घोषणा करने की जल्दबाजी करनी चाहिए, जब एक्स-रे हो, किसी विशेषज्ञ की राय अथवा प्रेक्षण की अवधि के बिना कोई राय नहीं दी जा सकती हो।

आजकल, जब अपराध को दबाने के लिए बहुत अधिक दबाब दिया जाता है। अस्पताल प्र ाशासक से कम से कम उम्मीद की जाती है कि वे इनसे प्रभावित नहीं हो। किसी भी चिकित्सक पर

उसकी चिकित्सीय भूल इस आशय से करने का आरोप कि किसी को न केवल शिकायतकर्ता द्वारा जैविकीय तथ्य के प्रति झुकाव को रोकने और रोगी अथवा उसके परिचर की आपराधिक मंशा को उजागर नहीं हो बल्कि अस्पतल के प्रशासक के हाथों परिकलित शोषण से भी मुक्त करता है।

जांच बिन्दु

1. अस्पताल प्रशासक की चिकित्सीय विधिक भूमिका क्या है?
2. क्या कई बार आरोप मढ़े नहीं जाते? और ये अनावश्यक रुप से उभर कर सामने नहीं आते?
3. चिकित्सीय विधिक यथार्थ तथ्यों पर विचार किए बिना ही किसी प्रशासनिक जांच में सही या गलत का निर्णय करना कितना खतरनाक है?
4. क्या चिकित्सीय विधिक शोषण से मुक्त होना तथा यथार्थ को जानना इतना आसान है?

2.6.1 आपातकालिक सेवा - उच्चतम न्यायालय के मार्गनिर्देश

किसी सरकारी क्षेत्र के अस्पताल में आपातकालिक सेवा के संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 6.5.96 को एस.पी.सं. 796/92 में पश्चिम बंग खेल मजदूर समिति एवं अन्य बनाम पश्चित बंगाल राज्य के मामले में उपचारी उपायों का सुझाव दिया ताकि वस्तुतः जरुरतमंद लोगों के लिए तत्काल चिकित्सीय इलाज एवं देखभाल सुनिश्चित की जा सके। आपातकालिक मामले के निपटान के क्रम में निम्नांकित मार्गनिर्देशों का ध्यान रखा जाना चाहिएः

अस्पताल में, आपातकालीन/आकस्मिक सेवा में तैनात चिकित्सा अधिकारी को आपातकालिक विभाग में संबंधित विशेषज्ञ के परामर्श से ही किसी गंभीर हालत वाले रोगी को भर्ती करना चाहिए।

यदि ऐसे रोगी को रखने के लिए संबंधित विभाग में बिस्तर नहीं भी उपलब्ध हो, तब भी सभी आवश्यक चिकित्सा उपचार किया जाना चाहिए।

तत्पश्चात, चिकित्सा अधिकारी को किसी रेजिडेन्ट मेडिकल ऑफिसर को साथ भेजकर ऐसे रोगी को एम्बुलेंस से किसी दूसरे अस्पताल में दाखिल करवाने की व्यवस्था करनी होगी।

आपातकालीन/हताहत वाले वार्ड में बिस्तर नहीं होने की वजह से रोगी को बिना इलाज के नहीं छोड़ना चाहिए।

संस्थान के प्रधान द्वारा आपातकालिक सेवा वाले विभाग की कार्य प्रणाली समय पर प्रबोधन करना चाहिए।

आपातकालिक सेवा विभाग में देखे गए रोगियों का चिकित्सीय अभिलेख, चिकित्सा अभिलेख विभाग में सुरक्षित रखा जाना चाहिए।

दाखिल किए गए रोगियों को दाखिल पंजी में जनसांख्यिक मापदंडों, दाखिले की तारीख और समय, किए गए इलाज का संकेत, हस्तांतरण/रेफरल, इत्यादि सहित ब्यौरों का साफ-साफ उल्लेख होना चाहिए। रजिस्टर के सुरक्षित रख-रखाव सुनिश्चित किया जाना चाहिए। साथ ही साथ इसका समय समय पर निरीक्षण किया जाना चाहिए।

इसी तरह, चिकित्सा अधिकारियों की ड्यूटी रोस्टर की प्रतियां भी चिकित्सा अधीक्षक के कार्यालय में सुरक्षित रखी जानी चाहिए और प्रत्येक विभाग में उपस्थिति पंजी होनी चाहिए।

रोगी को देखनेवाले चिकित्सा अधिकारी को इलाज वाले दस्तावेज में अपना नाम साफ-साफ लिखना चाहिए और अपने हस्ताक्षर करने चाहिए। रोगी को दिए गए इलाज की प्रति भी रिकार्ड के लिए रखी जानी चाहिए।

अस्पताल अधीक्षक ऐसे सभी अभिलेख अपने कब्जे में रखेगा।

2.6.2 चिकित्सा-अभिलेखों के विधिक पहलू

चिकित्सा अभिलेख में चिकित्सा के साथ-साथ कानूनी रिकार्ड भी होते हैं। चिकित्सीय दृष्टि से इससे रोगी की बिमारी की कालक्रमानुसार संक्षिप्त जानकारी तथा दूसरे चिकित्सकों का भी संदर्भ मिलता है। कानूनी दृष्टि से इनकी आवश्यकता विवादों के निपटान हेतु न्यायालय/बीमा कंपनियों में पड़ती है।

चिकित्सीय अभिलेखों की प्रास्थितिः कानूनी तौर पर, ये अस्पताल की संपति होती है लेकिन इसे अभिलेखों को उचित कालक्रमानुसार और गोपनीय ढ़ंग से भी रखने की जिम्मेवारी होती है। अस्पताल उन्हें रोगी अथवा रोगी की मृत्यु होने की दशा में उसके बिल्कुल निकट-संबंधी की लिखित अनुमति के बाद ही रिलीज कर सकता है।

रोगी की अभिलेखों की हकदारीः भर्ती किए गए सभी रोगी निम्नांकित चिकित्सीय अभिलेख प्राप्त करने के हकदार हैं - डिस्चार्ज सारांश जिसमें अस्पताल में रहने और प्रोफैशनल सलाह (अनुवर्ती कार वाई सहित) के ब्यौरे, एकस रे सोनोग्राम और सी.टी.स्कैन की प्रति/रोगी की मृत्यु होने पर, रोगी के बिल्कुल निकट के रिश्तेदार को मृत्यु प्रमाण पत्र और मृत्यु संबंधी संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

चिकित्सीय अभिलेख और न्यायिक अदालतः न्यायालय चिकित्सीय अभिलेखों पर बहुत अधिक भरोसा करता है और सामान्यतः आपराधिक मामले, वैयक्तिक क्षति के मामले, दुष्प्रयोग, बीमा वसीयत और कर्मकार क्षतिपूर्ति नियम के तहत आने वाले मामलों में इन्हें मांगता है। चिकित्सा अभिलेखों को निष्पक्ष माना जाता है और ऐसा माना जाता है कि इन अभिलेखों को तैयार करने वाले व्यक्तियों का

मुकदमे से कोई लेना देना नहीं था और उन्हें इसके बाद के मामले में कोई अभिरुचि नहीं थी। सभी अस्पतालों का यह संवैधानिक दायित्व है कि वह न्याय देने के कार्य में न्यायालय की सहायता करे।

न्यायालय निम्नांकित तरीकों से अभिलेखों को मांगेगाः

सम्मन/सपीना (सबपोइना) - आमतौर पर इसे संबंधित चिकित्सक/नर्स के नाम से जारी किया जाता है और चिकित्सीय अभिलेख के बारे में प्रमाण देने के लिए किसी दिन विशेष/तारीख विशेष को न्यायालय में हाजिर होने के लिए कहा जाता है। सम्मन भेजक (बुलाया गया व्यक्ति निदेशानुसार न्यायालय में हाजिर होने के लिए बाध्य है अन्यथा उनके विरुद्ध कार्यवाही शुरु की जा सकती है।

सपीना (सब पोइना) ड्यूस टीम - अस्पताल को चिकित्सा अभिलेख अधिकारी को किसी निर्धारित तारीख और समय में न्यायालय में कतिपय दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए जारी किया जानेवाला निदेश है। उक्त अभिलेख प्रस्तुत करने पर, गवाह की हाजिरी अपेक्षित नहीं होती है। ऐसे मामले में, इसकी फोटोस्टेट प्रति अस्पताल में रखने की सलाह दी जाती है (रोगी की बाद में भर्ती के लिए) और न्यायालय से इसकी प्राप्ति रसीद भी लेनी चाहिए।

2.6.3 चिकित्सा प्रमाण-पत्र - विधिक पहलू

अनेक स्थितियों में प्राधिकृत सरकारी चिकित्सकों से चिकित्सा प्रमाण पत्र लिया जाना अपेक्षित होता है। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण स्थितियों की सूची नीचे दी जा रही हैः

1. **शारीरिक रुप से विकलांग व्यक्ति** - ऐसा व्यक्ति दृष्टि से विकलांग (नेत्रहीन), बहरा या हड्डियों की दृष्टि से विकलांग हो सकता है। ये प्रमाण-पत्र प्रायः रोजगार के लिए आवश्यक होते हैं, क्योंकि सरकारी सेवाओं में कुछ पदों का प्रतिशत उनके लिए आरक्षित होता है।

   क) दृष्टि से विकलांग व्यक्ति वह होता है जिसकी पूर्णतः दृष्टि नहीं होती तथा बेहतर आंख में भी बिज्युएल एक्विटी 6/60 (स्नैलन) से अधिक नहीं होती। चाहे चश्में का भी उपयोग क्यों न करें अथवा 20 डिग्री या इससे भी कम कोण पर दृष्टि subtending क्षेत्र सीमित होता है।

   ख) श्रवण की दृष्टि से विकलांग व्यक्ति की दोनों कानों की कुल श्रवणशक्ति समाप्त हो चुकी होती है या बेहतर काम की श्रवण शक्ति 90 डेसीबेल से भी अधिक खत्म हो चुकी होती है।

   ग) हड्डियों की दृष्टि से (orthopaedically) विकलांग व्यक्ति तब कहलाता है जब उसमें कम से कम 40% शारीरिक कमी आ जाती है या हड्डी मांसपेशी तथा जोड़ों की सामान्य कार्य प्रणाली में बाधा के कारण विकृति आ जाती है।

2. प्रसूति लाभः महिला कर्मचारी प्रसूति अधिनियम 1961 में दिए गए अनुसार तथा प्रत्येक नियोक्ता पर बाध्यकारी समय समय पर बनाए गए नियमों एवं जारी संशोधित नियमों के अनुसार प्रसूति प्रसुविधा की हकदार है जिसमें अवकाश भी शामिल है। इस बारे में डाक्टर को गर्भ एवं बच्चे के जन्म/गर्भपात को प्रमाणित करना होगा।

3. अशक्तता अवकाशः अस्थायी या स्थायी प्रकार के अशक्तता अवकाश के बारे में इस आशय के चिकित्सा प्रमाणपत्र की जरुरत होती है। यदि यह अशक्तता ड्यूटी के समय हुई हो तो 120 दिन तक वेतन-अवकाश लेने का/की हकदार है (सीसीएस अवकाश नियम का नियम 45) तथा अनुमत्त प्राधिकृत चिकित्सा उपस्थिति भी है।

ये अशक्तता चोट लगने के तीन माह के भीतर घोषित होनी चाहिए तथा इस बारे में प्राधिकृत चिकित्सा अधिकारी का प्रमाणपत्र दुर्घटना के 24 माह के भीतर दिया जाना चाहिए। नए सिरे से अशक्तता या चोट के लिए ऐसे प्रमाणपत्र की पुनः आवश्यकता पड़ सकती है।

4. **आयुः** निम्नलिखित विभिन्न कारणों से अनेक प्रकार के मामलों में यथा संगत रुप में आयु निर्धारण की जरुरत पड़ सकती हैः

क) **आपराधिकताः** आई पी सी की धारा 82 में 7 साल से कम आयु के बच्चे से संबंधित अपराध के मामले में कुछ प्रतिरक्ष प्रावधान है, जबकि धारा 8.3 के तहत 7 से 12 वर्ष के बीच आयु के बच्चे के बारे में सीमित आपराधिकता मानी जाती है।

ख) **चिकित्सा जांच की सहमति** - 12 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्ति के बारे में चिकित्सा जांच की सहमति दी जा सकती है।

ग) मृत्यु या गंभीर चोट के आशय से रहित किसी नुकसान के बारे में सहमति 18 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्ति को दी जा सकती (आई पी सी 87 देखें) इसमें सर्जिकल आपरेशन, आदि के जोखिम भी शामिल है।

घ) **कारावासः** किसी अपराध के लिए दोष सिद्ध किशोर अपराधी को कारावास में नहीं डाला जाए। इन्हें रिमांड होम, आदि में रखने से संबंधित नियम हैं।

ड) **बलात्कारः** आयु का भी संबंध है, क्योंकि युवती की सहमति होने पर भी संभोग को बलात्कार माना जा सकता है।

जांच बिन्दु

1. विधिक प्रयोजनार्थ शारीरिक विकलांगता का क्या अर्थ है?
   किसी व्यक्ति को नेत्र-हीन कब कहा जा सकता है।

2. कथित अपराध में आयु की क्या प्रासंगिकता है?

2.7 यूनिट समीक्षा संबंधी प्रश्न

1. किस प्रकार से अन्वेषक एवं निर्णय लेने वाले अभियोजन के समय चिकित्सा राय पर निर्भर रहते हैं तथा यह निर्णय लिया जाता है कि किसी व्यक्ति को दोषी ठहराया जाए या बरी कर दिया जाए?
2. चिकित्सा - विधिक मामलों से जानबूझकर छेड़छाड़ के लिए चिकित्सा क्षेत्र से जुड़े व्यक्ति के लिए विधिक खतरे क्या हैं?
3. क्या आपराधिक आशय तथा घायल का व्यवहार कानून से जुड़े व्यक्तियों के व्यवहार एवं आपराधीकरण के चिकित्सा-कृत्य ने चिकित्सा विधिक कार्य क्षेत्र को नए आयाम दिए हैं?
4. डाक्टर को चिकित्सा-विधिक कर्तव्यों के प्रतिष्ठित ढंग से निर्वहन एवं चिकित्सा प्रायोजित अपराध पर अंकुश रखने में अस्पताल प्रशासक की चिकित्सा विधिक भूमिका कितनी महत्वपूर्ण है?

2.8 सुझाई गई पाठ्य सामग्री/संदर्भ

1. क्रिमिनल मैनुअल ऑफ क्रिमिनल प्रोसीजर कोड, इंडियन पेनल कोड एण्ड इंडियन एविडेन्स एक्ट।
2. एस.के.शर्मा, एम.के.जैनः अनरैस्ट ऑफ मेडीकल रैस्टः हरियाणा मेडिकल जनरल, खंड 13, सं.9, जून, 1993
3. सुरेन्द्र के. शर्मा, एस.भारद्वाज षडिजीटल फ्रैक्चर - फारेन्सिक व्यूप्वाइन्ट. IND.J.Redial Imag.1991 (मई) 57-60
4. मोदी टेक्स्टबुक ऑफ मेडिकल जुरिसप्रुडेंस एण्ड ऑक्सीकोलोजी - संपादक

   सी.ए.फ्रैंकलिन, एम.डी
   प्रकाशक - एन.एम.त्रिपाठी प्राइवेट लि.
   बम्बई 1998, पृष्ठ 288-294 और 521-527

यूनिट 3 चिकित्सा नीतिशास्त्र

संरचना

3.1 उद्देश्य
3.2 प्रस्तावना
3.3 सामान्य नीतिगत विचार
3.4 चिकित्सीय आधार एवं चिकित्सक
  3.4.1 चिकित्सकों के सामन्य कर्तव्य
  3.4.2 रोगी के प्रति चिकित्सकों के कर्तव्य
  3.4.3 एक दूसरे के प्रति चिकित्सक के कर्तव्य
3.5 आचार संहिता
3.6 नीतिशास्त्र एवं परिचर्या
3.7 अस्पताल की नीति संहिता
  3.7.1 प्रबंधक एवं अस्पताल की नीतियां
  3.7.2 अस्पताल में नीति संबंधी समिति
  3.7.3 प्रायोगिक परीक्षा में नई औषधि एवं रोगियों पर इनका प्रयोग
3.8 वर्तमान समय में चिकित्सीय समस्याओं की नीति
  3.8.1 एड्स
  3.8.2 गर्भपात
  3.8.3 युथानेशिया
  3.8.4 परिवार नियोजन
  3.8.5 गोद लेने संबंधी मुद्दे
3.9 नीतिगत मुद्दे एवं निर्धन रोगी
3.10 नीतिगत मुद्दे और महिला रोगी
3.11 प्रबंधन के मुद्दे
3.12 यूनिटे की समीक्षा के प्रश्न
3.13 संस्तुत पाठ्य पुस्तकें/संदर्भ साहित्य

3.1 उद्देश्य

इस यूनिट के अध्ययन के पश्चातः

i. आपको चिकित्सकों, परिचारिकाओं, अस्पतालों और अस्पताल के प्रबंधकों के नीतिगत दायित्वों के बारे में स्पष्ट जानकारी हो जाएगी;

ii. आप कतिपय व्यवहारों के संबंध में चिकित्सा व्यवसाय के भीतर स्वीकृत संहिताओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेंगें;

iii. रोगी के इलाज में नीतिगत मुद्दे और चिकित्सा पेशा में कुछ विवादास्पद मुद्दों से संबंधित जटिलताओं को समझ पाएंगें;

iv. चिकित्सा व्यवसाय में नीति से उत्पन्न होनेवाले प्रबंधकीय मुद्दे के बारे में जान पाएंगे।

3.2 प्रस्तावना

अविस्मरणीय काल से ही चिकित्सकों को विश्व के विभिन्न हिस्से में समाज में बहुत अधिक सम्मान दिया जाता रहा है और यहां तक कि चिकित्सकों की सभी आलोचनाओं के होते हुए आधुनिक काल में भी यह सच है। दवा के प्रयोग में आने के समय से ही चिकित्सीय नीतिशास्त्र अस्तित्व में रहा है और प्राचीन सभ्यता में भी इनके होने के संदर्भ उपलब्ध हैं। यह कोई संयोग नहीं है कि दुनिया की अनेक प्रमुख भाषाओं में दवा की प्रैक्टिसनर को ऐसे शब्दों से संबोधित किया जाता है जिसका अर्थ डाक्टर ही होता है, डॉक्टर (सबसे अधिक विद्वान), हकीम (ज्ञानी), वैद्य (जानकार)। जहाँ यह समाज का डाक्टर के प्रति एक मित्र, दार्शनिक और पथ प्रदर्शक होने के रुप में छवि और धारणा को प्रतिबिम्बित करता है, वहीं यह डाक्टर के ऊपर उस महिला/पुरुष डाक्टर का समाज के प्रति बहुत बड़ी जिम्मेवारी भी है और यह जिम्मेवारी उनकी तकनीकी दक्षता से बिलकुल हटकर है चूँकि इसका अधिक संबंध मानवीय सूझबूझ के गुण से है जिससे चिकित्सा पेशे को एक भद्र पेशा माना गया है। चिकित्सा नीति-शास्त्र इसी उत्तरदायित्व के बारे में है। वर्तमान समय में, नीतिशास्त्र, आचार-विचार बहुत ही जटिल मुद्दा है क्योंकि इसमें सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मान्यताओं एवं प्रथाओं से इसका कोई संबंध नहीं है। जीवन की मदद करने की नई तकनीकों, ष मष्तिक मृत्यु ष के प्रयोग से, मानवीय अंगों को निकाला जाना, मानव मात्र पर दवाओं के प्रयोग आदि नीतिगत चिकित्सा व्यवसाय में चिन्ता के प्रमुख विषय हो गए हैं।

निम्नांकित उद्धरण चिकित्सीय नीतिशास्त्र की आवश्यकता, महत्व और क्षेत्र को परिकलित करते हैं -

- विद्या सम्मान उतना ही प्रिय होना चाहिए जितना की आपका अपना सम्मान, और आपकी प्र ातिष्ठा अपने मालिक के भय से संबंद्ध होनी चाहिए और अपने मालिक का भय स्वर्ग के भय के समान है।

बेबीलोनिअर तलमुड

- मेरे तीन वैयक्तिक आदर्श हैं एक दैनिक कार्य का अच्छी तरह निष्पादन

  दूसरा अपने व्यावसायिक बंधुओं और मेरी देख रेख करने वाले माता-पिता के प्रति

  और तीसरा ऐसी शांति उत्पन्न करने का है, जिससे मुझे नम्रता से सफलता, गर्व से मित्रों का स्नेह मिलेगा और दुःख होने पर इसे सहने तथा

  पौरुषबल से इनका सामना करने का आदर्श

  विलियम ओस्लर (1849-1919)

- नीति व्यवहार मनुष्य की ऐसी क्रिया है, जो उसके स्वयं के व्यक्तित्व की आंतरिक पूर्णता देने के लिए है।

  अल्वर्ट स्क्वीजर

- वि फिजीशियन, जो अपने गुरु के मार्गदर्शन में औषधि विज्ञान सीखता है और नियमित रुप से व्यावहारिक प्रशिक्षण लेता है और फिर चिकित्सा दोर में प्रैक्टिस करता है वही सच्चे अर्थ में फिजीशियन हैं बाकी सभी क्वैक हैं।

  सुश्रुत संहिता

दैनिक प्रैक्टिस में कुछ विधिक एवं नीतिगत समस्याएं

क. दवा का प्रयोग
- प्रतिबंधित दवा
- घटिया/नकली दवाएं
- आयुर्वेदिक दवाएं
- देशी जड़ी बूटियों का प्रयोग एवं अन्य दवाएं
- होम्योपैथिक दवाएं
- दवाओं के कारण लैट्रोजोनिक विकृतियां
- एकस-रे

ख. गर्भपात एवं परिवार नियोजन
- लक्ष्य बनाम मानवस्वाभिमान
- सामुदायिक आवश्यकता बनाम वैयक्तिक सुरक्षा
- गर्भपात एवं एम.टी.पी.

ग. बांझपन चिकित्सा संबंधी प्रबंधन क्षेत्र में प्रगति
- प्रसव से पूर्व लिंग निर्धारण
- सहयोग बनाम स्वीकृति

'स्टार्म इन एट्रैस्ट टयूब' - भ्रुण के अधिकार (वार्नेक समिति)

घ. मृत्यु की परिभाषा - न उलटने योग्य क्षति का मानदंड
- अंगदान
- यूथैपनैशिया और गरिमाय मृत्यु पाने का अधिकार
- अलग-अलग धर्मों में पीड़ित होने या कष्ट और मृत्यु का अर्थ

ड. लापरवाही - पक्षपात का दायित्व
- रोगी का योगदान

3.3 सामान्य नीतिगत विचार

पूरी चिकित्सा-पद्धति में नीतिगत व्यवहार आवश्यक है जिसमें मुख्यतः रोगी के कल्याण पर ि वचार किया जाता है। नीतिगत व्यवहार प्रत्येक डाक्टर स्वतः लागू होने वाली ड्यूटी है और कार्यालयी निन्दा से बचने के लिए स्वार्थ पूर्ण व्यवहार कोई गर्व की बात नहीं है। किसी व्यक्ति के सहकर्मी की अस्वीकृति कम से कम उतनी ही निवारक कार्रवाई है, जितनी कि विधि न्यायालय का प्र ाधिकार।

चिकित्सा के क्षेत्र में नीति सम्मत व्यवहार का वर्णन व्यवहार के ऐसे नियम के रुप में किया जाता है जो शासकीय विधायन से संबद्ध सांविधिक प्रावधानों और विनियमों के विरुद्ध है। अधिकतर चिकित्सीय नीतिगत व्यवहार में सामान्य तौर पर अच्छे तौर तरीके और सभ्य व्यवहार आते हैं लेकिन कुछ ऐसे मामले हैं जो चिकित्सा व्यवसाय में विचित्र हैं और चिकित्सीय व्यवहार के वे सभी पहलू, जो औपचारिक विधायन से अलग हैं, इन्हें ज्यादातर डाक्टर के विवेक और उसकी अंतरात्मा पर छोड़ा गया है। किसी डाक्टर का अपने रोगी के प्रति आचरण मुख्यतः प्रोफेशनल उत्तरदायित्व के प्र ाति उसकी स्वयं की भावना तथा नीतिगत पक्षों के प्रति उसकी जागरुकता पर निर्भर करता है। चिकित्सीय नीतिगत विचार कई प्रकालों में से यह सुनिचश्त करता है कि डाक्टर की वरिष्ठता का दुरुपयोग /उल्लघंन नहीं हो।

चिकित्सीय नीति की प्रचीनतम संहिता चिकित्सकों के साथ-साथ (जनसाधारण) को भी ज्ञात है जैसे हिप्पोक्रेटिक शपथ। इसलिए अब यह 25 सदी पुराना हो गया है लेकिन यह मूल सिद्धान्त आज भी सदा की तरह विधि मान्य है। इसे पहले नये डाक्टर स्नातक की डिग्री लेते समय यह शपथ लेते थे। हिप्पोक्रेटिक शपथ का अनुवाद निम्नानुसार हैः

''मैं अपोलो, फिजीशन और एस्कूलेपियस एंव स्वास्थ्य तथा सभी देवी देवताओं की शपथ लेता हूँ कि अपनी योग्यता एवं निर्णय से मैं इस शपथ और इसमें उल्लिखित शब्दों का निर्वाह करुंगा - जिन्होंने मुझे यह सिखाया उनका सहयोग करने के साथ साथ हमारे माता-पिता की तरह प्रिय हैं उनकी मदद करने के लिए अपनी योग्यता उनके साथ बांटने और यदि जरुरत पडी तो उनका कार्य-बोझ कम करने अपने भाई की तरह उनकी संतानों को मानने तथा सर्वप्रथम उन्हें यह कला सिखाने, यदि वे इसे सीखना चाहेंगे, बिना शुल्क रुपये और शिक्षण की प्रत्येक विधि से मैं, इस कला का ज्ञान अपने स्वयं के पुत्रों को, अपने गुरु भाईयों को और आयुर्वेद के नियम को मानने वाले शिष्यों को इसकी शिक्षा दूँगा लेकिन किसी दूसरे को नहीं। मैं, समुचित शासन प्रणाली का अनुसरण करुँगा जो मेरी योग्यता और निर्भय के अनुसार, रोगियों के लाभार्थ है और किसी भी दुर्व्यवहार से बचूंगा। मांगने पर मैं किसी को जानलेवा दवा नहीं दूंगा ना ही ऐसी कोई सलाह दूंगा और इसी तरह मैं किसी भी महिला पर गर्भपात के लिए दबाव नहीं डालूगा। शुद्ध पवित्रता और ईश्वर के नाम से मैं अपना जीवन व्यतीत करुँगा और अपनी कला की प्रैक्टिस करुँगा मैं पत्थर के तहत श्रम कर रहे व्यक्तियों को नहीं काटूँगा लेकिन इस कार्य को प्रैक्टिशनर द्वारा किए जाने के लिए छोड़ दूंगा। जिस किसी भी घर में मैं प्रवेश करुंगा,मैं रोगी की मदद करने जाऊंगा और हर स्वैच्छिक भ्रष्टाचार से बचने के अलावा महिलाओं अथवा पुरुषों, आजाद व्यक्ति या गुलाम के बहकावे में नहीं आऊंगा। मेरे प्रोफेशनल प्रैक्टिशस के संबंध में, मैं ऐसा कुछ भी सुनूंगा या देखूंगा, जिसे जोर से नहीं बोला जा सकता है, मैं इसका रहस्योदघाटन नहीं करुंगा ऐसा मानते हुए कि अमुक जानकारी गुप्त रखी जानी चाहिए। मैं इस शपथ का उल्लंघन नहीं करुंगा, इसे जीवन और कला की प्रैक्टिस करने के लिए और हर काल में सभी द्वारा सम्मान किए जाने के लिए दिया जाए। यदि मैं इस शपथ का उल्लंघन करुं तो मेरा भाग्य उल्टा पड़ जाए।'

बदलते हुए वैश्विक परिदृश्य को देखते हुए, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बर्ल्ड मेडिकल एशोसियशन द्वारा इसे जेनेवा-घोषणा पत्र में फिर से लिखा गया। पूरी दूनिया के संबंधित मेडिकल काउंसिल ने इसे ही स्वीकार किया है। भारतीय चिकित्सा परिषद निम्नांकित घोषणा पत्र की एक प्रति रजिस्ट्रेशन के लिए आवेदन करने वाले प्रत्येक चिकित्सक को देता है जो इसे पढ़ेगा और इसका अनुपालन के लिए आबद्ध होगाः

घोषणा पत्र

1. मैं निष्ठापूर्वक शपथ लेता हूं कि अपना जीवन मानव मात्र की सेवा में न्योछावर करुँगा।
2. खतरे की स्थिति में भी, मैं अपने चिकित्सा ज्ञान का उपयोग मानवता के विरुद्ध नहीं करुंगा।
3. उद्भव के समय से ही, मैं मानव जीवन के प्रति अत्याधिक श्रद्धा भाव रखूंगा।
4. मैं धर्म, राष्ट्रीयता, रंग, राजनीति, सामाजिक स्थिति को अपनी ड्यूटी और रोगी के बीच में हस्तक्षेप नहीं करने दूंगा।
5. मैं विवेक और स्वाभिमान से अपने प्रोफेशन का निर्वाह करुंगा।
6. अपने रोगी का स्वास्थ्य मेरी पहली प्राथमिकता होगी।
7. मैं गोपनीयता का आदर करुंगा, जो मुझ तक ही सीमित रहेगा।

8. मैं अपने शिक्षकों को उचित सम्मान दूंगा और उनके प्रति आभार व्यक्त करुँगा।
9. मैं अपनी शक्ति, सम्मान और चिकित्सा प्रोफेशन की भद्र परंपरा का सर्वथा निर्वाह करुंगा।
10. मेरे सहकर्मी मेरे भाई होंगे।

मैं निष्ठापूर्वक स्वतंत्रता पूर्वक और अपनी स्वेच्छा से यह शपथ लेता हूँ।

3.4 चिकित्सा नीति और चिकित्सक

उक्त घोषणा के अनुसार पाठ इस प्रकार हैः

3.4.1 डाक्टर के सामान्य कर्तव्य

चिकित्सक को निश्चित रुप से हमेशा व्यावसायिक आचरण के सर्वोच्च स्तर को बनाए रखना चाहिए।

चिकित्सक को लाभ की प्रेरणा से प्रभावित हुए बगैर प्रोफेशन का निर्वाह करना चाहिए।

निम्नांकित व्यवहार को नीति सम्मत नहीं माना जाता हैः

1. स्वयं का विज्ञापन, जब तक यह चिकित्सा प्रोफेशन की राष्ट्रीय संहिता द्वारा प्राधिकृत सीमाओं के भीतर नहीं हो।

2. किसी ऐसी चिकित्सा सेवा से संबंद्ध होना जिसमें उनकी प्रोफेशनल स्वतंत्रता नहीं हो।

3. उचित व्यावसायिक शुल्क के अलावा रोगी की सेवा के बदले किसी प्रकार से धन लेना, भले ही रोगी को इसकी जानकारी क्यों न हो।

कोई भी कृत्य अथवा सलाह, जिससे मनुष्य की शारीरिक अथवा मानसिक प्रतिरोध क्षमता कमजोर होती हो, केवल उसके हितार्थ ही दिया जा सकता है।

डाक्टर को सलाह दी जाती है कि इलाज की नई तकनीक अथवा किसी खोज का खुलासा करने में अत्यधिक सतर्कता बरतें।

चिकित्सक को केवल उसी चीज को प्रमाणित करना चाहिए जिसका उसने व्यक्तिगत तौर पर सत्यापन किया है।

3.4.2 रोगी के प्रति चिकित्सक के कर्तव्य

डॉक्टर को हमेशा मानव जीवन की रक्षा का नैतिक कर्तव्य याद रखना चाहिए।

डाक्टर अपने रोगी के प्रति पूर्ण वफादारी और अपने विज्ञान के सभी संसाधनों का उपयोग करने के लिए प्रतिबद्ध है। जब कभी भी कोई जाँच या इलाज उसकी क्षमता से परे हो तो उसे दूसरे चिकित्सक को बुलाना चाहिए जिसके पास आवश्यक योग्यता है।

चिकित्सक अपने रोगी के बारे में जो कुछ भी गोपनीय बातें जानता है, स्वयं पर किए गए ि वश्वास के कारण इसे बिलकुल गुप्त रखेगा।

चिकित्सक को मानवता के कर्तव्य के रु प में आपातकालीन सेवाएं देनी चाहिए जब तक कि वह इस तथ्य से आश्वस्त नहीं हो कि अन्य व्यक्ति ऐसी देखभाल करने के इच्छूक हैं और वे ऐसा करने में सक्षम हैं।

3.4.3 चिकित्सकों का एक दूसरे के प्रति कर्तव्य

- चिकित्सक को अपने सहकर्मियों के साथ वही व्यवहार करना चाहिए, जैसा कि वह अपने प्र ाति चाहता है।
- चिकित्सक को अपने सहकर्मियों के रोगियों को मोहित नहीं करना चाहिए।
- डाक्टर को वर्ल्ड मेडिकल एसोसिएशन द्वारा अनुमोदित जेनेवा घोषणा पत्र के सिद्धान्तों का अवश्य अनुपालन करना चाहिए।

3.5 आचार संहिता

उपर्युक्त संदर्भों को ध्यान में रखते हुए डॉक्टर को निम्नांकित आचार संहिता का पालन करना चाहिएः

1. **चिकित्सक (फिजीशियन) का आचरण** - चिकित्सक (फिजीशियन) को ईमानदार होना चाहिए, इलाज की कला में यह अनुदेश दिया गया है। उसे सदचरित्र होना चाहिए और रोगी की देखभाल में मेहनती होना चाहिए।

2. **चिकित्सक (फिजीशियन) का उतरदायित्व** - चिकित्सक (फिजीशियन) को स्वयं पर किए गए विश्वास को बरकरार रखना चाहिए और सेवा एवं सर्मपण भाव से उनका इलाज करना चाहिए। चिकित्सक (फिजीशियन) को वैज्ञानिक तरीके से इलाज करना चाहिए और अपने पेशे में ऐसे व्यक्ति से संबंध नहीं रखना चाहिए जो इस सिद्धान्त का उल्लंघन करता है।

3. **विज्ञापन** - कोई फिजीशियन ऐसे उपकरण का प्रयोग नहीं करेगा न ही दूसरे को अपना अथ वा अपने नाम का उपयोग करने देगा, जिससे अकेले अथवा दूसरे के साथ उसका इस प्र ाकार से प्रचार प्रसार हो, जिससे उसकी व्यावसायिक स्थिति, दक्षता, योग्यता, इत्यादि की ओर जनसाधारण का ध्यान आकृष्ट होता हो। किसी भी मेडिकल प्रैक्टिशनर को निम्नलिखित के संबंध में औपचारिक तौर पर घोषणा करने की अनुमति हैः

   क. प्रैक्टिस शुरु करने पर

ख. प्रैक्टिस का प्रकार बदलने पर
ग. पता बदलने पर
घ. ड्यूटी से अस्थायी तौर पर अनुपस्थित रहने पर
ड. अन्य प्रैक्टिस शुरु करने पर
च. अन्य प्रैक्टिस अपनाने पर

4. प्रोफेशनल सेवाओं से संबंधित भुगतान - चिकित्सा क्षेत्र से संबद्ध नीतिगत फिजीशियन रोगी को दी गई सेवा के बदले में सीमित आय के स्रोत रखता है। सेवाएं देते समय रोगी को उनकी सेहत के बदले जितनी और जिस रुप में पारिश्रमिक देने के लिए कहा जाए उसी रुप में और उतनी ही राशि प्राप्त की जानी चाहिए। ''भुगतान नहीं इलाज नहीं नीति सम्मत नहीं है।''

5. ओपन शॉप चलाना - (फिजीशियन द्वारा दवा और अन्य उपकरण दिया जाना) फिजीशियन को अपने स्वयं के अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा सुझाई गई दवाओं की बिक्री अथवा मेडिकल या सर्जिकल उपकरण बिक्री के लिए दुकान नहीं खोलनी चाहिए।

6. रियायत और कमीशन - कोई फिजीशियन रोगी को भेजने के बदले अथवा किसी रोगी की शल्य चिकित्सा या दूसरे इलाज की संस्तुति करने के बदले न तो कोई गिफ्ट, उपादान, कमीशन या बोनस न लेगा न देगा और न ही मांगेगा।

7. कानूनी प्रतिबंधों से बचना - फिजीशियन मेडिकल प्रैक्टिस से संबंधित देश के कानून के ि वनियमों का पालन करेगा और अन्य व्यक्तियों को इससे बचने में सहायता नहीं करेगा।

8. रोगी के प्रति देयता - यद्यपि फिजीशियन आपातकालीन स्थिति को छोड़कर अपने पास आने वाले हर व्यक्ति का इलाज करने के लिए बाध्य नहीं है, तथापि उसे बीमार और घायल व्यक्तियों के बुलाए जाने पर न केवल उनकी सेवा के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए बल्कि अपने लक्ष्य और उत्तरदायित्व के प्रति सचरित्र अक्षुण्ण बनाए रखने के मामले में सजग रहना चाहिए और प्रोफेशनल कर्तव्य का निष्ठापूर्वक निर्वाह करना चाहिए।

9. धैर्य, शालीनता और गोपनीयता - धैर्य और शालीनता उनकी पहचान होनी चाहिए। किसी व्यक्ति विशेष अथवा उसे घरेलू जीवन की गोपनीयता का खुलासा तब तक नहीं करना चाहिए तब तक कि राज्य/देश के कानून के अनुसार ऐसा करना आवश्यक न हो।

10. पूर्वानुमान - फिजीशियन को रोगी की स्थिति की गंभीरता को न तो बढ़ा चढाकर कहना चाहिए और न ही कम बताना चाहिए। उसे स्वयं आश्वस्त होना चाहिए कि रोगी उसके रिश्तेदार अथ वा उसके जिम्मेदार मित्रों को रोगी की ऐसी दशा की जानकारी है जिससे रोगी और उसके परिजनों के हितों की रक्षा होगी।

11. रोगी की उपेक्षा नहीं - किसी भी मामले को लेने के बाद फिजीशियन को रोगी की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए और ना ही रोगी को सूचित किए बगैर उसका इलाज बन्द करना चाहिए।

12. प्रोफेशन की गरिमा को अक्षुण्ण रखना - फिजीशियन से उम्मीद की जाती है कि वह प्र ोफेशन की गरिमा और स्वाभिमान को बरकरार रखे।

13. मेडिकल सोसाइटी सदस्यता - प्रोफेशन को आगे बढ़ाने के लिए फिजीशियन को मेडिकल सोसाइटियों के साथ जुड़कर अपना समय, ऊर्जा और साधनों का योगदान करना चाहिए ताकि इन सोसाइटियों से प्रोफेशन को आदर्श परिलक्षित हो सके।

14. अनैतिक आचरण का प्रत्यक्षीकरण - फिजीशियन को बिना किसी अनुराग या भय के अपने प्र ोफेशन के सदस्यों के द्वारा किए जाने वाले अधम, भ्रष्ट, बेईमान और अनैतिक कार्यों को उजागर करना चाहिए।

15. फिजीशियन की परस्पर निर्भरता - हालांकि, ऐसा कोई नियम नहीं है लेकिन पेशे की यह मांग है कि एक फिजीशियन को दूसरे फिजीशियन से अपनी सेवा के बदले कोई फीस नहीं लेना चाहिए और प्रसन्नचित होकर किसी प्रतिपूर्ति के बिना ही फिजीशियनों और उनके आश्रितों का इलाज करना चाहिए।

16. परामर्श को बढ़ावा दिया जाना चाहिए - गंभीर बीमारी की हालत में खासकर जब संदेहास्पद अथवा कठिन परिस्थितियां हो तो चिकित्सक को परामर्श का अनुरोध करना चाहिए। प्रत्येक परामर्श में, रोगी के हित को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

17. परामर्श में समय पाबंदी - परामर्श के लिए मिलने में अत्यधिक समय पाबंदी का पालन करना चाहिए।

18. परामर्श में आचरण - परामर्श में कोई लापरवाही प्रतिद्वन्दिता का भाव अथवा ईर्ष्या नहीं होनी चाहिए। केस के प्रभारी फिजीशियन को हर प्रकार से उचित सम्मान दिया जाना चाहिए और ऐसी कोई टिप्पणी नहीं की जानी चाहिए, जिससे किए गए भरोसे पर कोई आंच आए।

19. परामर्शदाता द्वारा रोगी की बीमारी का प्रभार नहीं लेना - जब किसी फिजीशियन को परामर्श देने के लिए बुलाया जाता है, केवल सर्वाधिक दुर्लभ और अपवादजनक परिस्थितियों में ही परामर्शदाता को रोगी सौंपा जाना चाहिए।

20. विशेषज्ञों को भेजा गया रोगी - जब रोगी का इलाज करने वाले फिजीशियन द्वारा किसी ि वशेषज्ञ के पास रोगी को भेजा जाता है तो विशेषज्ञ को मामले का कथन स्टेटमेंट दिया जाना चाहिए। जो यह पहले इलाज करने वाले फिजीशियन को प्रत्यक्ष रु प से लिखित राय देगा।

21. प्रतिस्थापना के रुप में नियुक्ति - जब कभी भी कोई फिजीशियन अपनी तात्कालिक अनुपस्थिति के दौरान किसी दूसरे फिजीशियन से रोगी का इलाज करने का अनुरोध करता है तो इस प्रोफेशन की शिष्टता के अनुसार ऐसी अपेक्षा की जाती है कि अन्य कर्तव्यों के अनुरुप ही इस कर्तव्य का भी निर्वाह किया जाए।

22. शिशु जन्म के मामले में कार्य सौंपा जाना - यदि प्रसव पीड़ाकाल से गुजर रही किसी महिला को इलाज करने के लिए चिकित्सक राजी हो जाता है तो उसे अपनी ड्यूटी अवश्य निभानी चाहिए। किसी दूसरी व्यस्तता का बहाना स्वीकार्य नहीं है, इसी तरह के अथवा किसी दूसरे गंभीर रोगी के इलाज में व्यस्त होने की स्थिति उसका अपवाद है।

23. नागरिक के रुप में चिकित्सक (फिजीशियन) - अच्छे नागरिक के रुप में सुशिक्षित और ि वशेष रुप से प्रशिक्षित चिकित्सक (फिजीशियन) को सामुदायिक स्वास्थ्य के बारे में भी सलाह देनी चाहिए।

24. लोक स्वास्थ्य - खासकर लोक स्वास्थ्य के कार्य से जुड़े चिकित्सकों (फिजीशियनों) को संगरोध विनियमों के बारे में लोगों को अवगत कराना चाहिए, साथ ही महामारी संक्रामक रोग और संसर्गीय रोगों की रोकथाम के लिए किए गए उपायों की जानकारी भी लोगों को देनी चाहिए।

25. फार्मासिस्ट - चिकित्सकों (फिजीशियनों) को फार्मेशी वृति को बढ़ावा देना चाहिए और नीतिगत तथा वैज्ञानिक दवाओं के संबंध में प्रैक्टिस के बारे में फार्मासिस्टों को सहयोग प्रदान करना चाहिए।

जांच बिन्दु

1. चिकित्सीय नीतिशास्त्र क्या है और इसकी जरुरत क्यों है?
2. चिकित्सकों (फिजीशियनों) के लिए आचार संहिता की मुख्य बातें क्या हैं?
3. आज के समय में, विभिन्न राष्ट्रों द्वारा स्वीकार किए गए कोड क्या हैं? और इनकी मुख्य मुख्य बातें क्या हैं?

3.6 नीतिगत विचार और परिचर्या

मानव मात्र की सेवा करना परिचारिका (नर्सों) का प्राथमिक कार्य है और इसी के लिए नर्स की वृत्ति का अस्तित्व है। नर्सिग सेवा की जरुरत सार्वभौमिक है। पेशागत नर्सिग सेवा मानवीय आ वश्यकता पर आधारित होती है और इसलिए इसमें राष्ट्रीयता, रंग, धर्म, राजनीति अथवा प्रास्थिति का कोई ध्यान नहीं रखा जाता है। नर्स व्यक्ति विशेष, परिवारों और समुदाय को स्वास्थ्य सेवाएं प्र ादान करती हैं ओर अपनी सेवाओं का संबंधित समूह के साथ समन्वय स्थापित करती हैं। वृत्ति में इस बात की मान्यता है कि कोई भी अंतर्राष्ट्रीय कोड नर्स की सभी क्रिया कलापों और उनके संबंध को ि वस्तार में नहीं बता सकता है, जिसमें से कुछ अलग-अलग दर्शन और मान्यताओं पर आधारित हैं।

नर्स को नाइटिंगेल की शपथ को हिप्पोक्रेट की शपथ जैसे ही लेनी पड़ती है। इसमें अपेक्षा की जाती है कि नर्स को अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह कृपा दयाभाव और विश्वास से करना चाहिए।

एक इन्टरनेशनल काउंसिल ऑफ नर्सिग भी है और हमारे देश के ष्इन्डियन नर्सिग काउंसिलष सहित अलग-अलग देशों में राष्ट्रीय स्तर पर काउंसिल हैं। नर्स से अपेक्षा की जाती है कि वे इन काउंसिलों में रजिस्ट्रेशन कराकर उनके द्वारा दिए गए आचार संहिता का पालन करें।

3.7 अस्पताल के नीतिगत पहलू

सं.रा.अमेरिका और कनाडा के अलावा, अस्पतालों के लिए अलग से कोई नीतिगत सिद्धान्त नहीं बनाए गए हैं वहां भी इसे हाल ही में अमेरिकन हॉस्पीटल एशोसिएशन और अमेरिकन कॉलेज ऑफ हॉस्पिटल ऐडमिनिस्ट्रेटर्स के प्रयासों के फलस्वरुप तैयार किया गया है। इसमें अस्पताल के कार्मिकों के व्यावसायिक एवं प्रशासनिक - दोनों उत्तरदायित्वों का उल्लेख किया गया है। अस्पतालों को विचित्र स्वैच्छिक प्रकृति और प्राइवेट प्रैक्टिशनरों को लेकर खुला स्टाफ रखने की व्यवस्था के कारण यह संहिता आवश्यक हो गयी है। दुनिया के बाकी हिस्से में अस्पताल आमतौर पर सरकार के अधीन होते हैं और इनका प्रशासन ऐसे ही उच्च प्राधिकारी के हाथों में होता है। आमतौर पर, ऐसा माना जाता है कि सरकारी अस्पताल अथवा धार्मिक अस्पताल का गठन मुनाफा कमाने के लिए नहीं किया जाता है और केवल लोक हितार्थ अस्पताल कार्य करते हैं और इसलिए इन पर कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है। तथापि, कुछ देशों में अदालती फैसले में इस उन्मुक्तता को बदल दिया गया है और सरकारी अस्पतालों को अपने कर्मचारियों की लापरवाही के लिए जिम्मेवार ठहराया गया है। इतना ही नहीं, जनसाधारण और समाज, जो सरकारी अस्पतालों को भुगतान करती है अच्छी तरह रोगी की देख रेख नहीं करनेवाले अस्पतालों के विरुद्ध प्रशासनिक कार्रवाई किए जाने की उम्मीद और मांग करती है। किसी मेडिकल प्रैक्टिशनर के मामले में, व्यक्तिगत तौर पर लागू नीतिगत नियम अस्पतालों के मेडिकल प्रैक्टिस के मामले में भी कतिपय आशोधनों सहित लागू है ऐसा अस्पतालों के संगठन स्वरुप के कारण हैं ये निम्नानुसार हैं।

1. यह मानते हुए कि रोगी की देख रेख उनकी पहली जिम्मेवारी है और किसी धार्मिक न्यास/अस्पताल को हमेशा अस्पताल की जरुरत में सभी को सर्वोत्कृष्ट देख रेख और इलाज उपलब्ध कराना चाहिए।
2. अस्पताल को राष्ट्र के स्वास्थ्य की रक्षा में अनुपम भूमिका से अवगत होकर दयाभाव से जी वन का प्रतिपालनीय विकास करने, पीड़ा कम करने तथा सामुदायिक स्वास्थ्य में सुधार करने के लिए हर संभव प्रयास करना चाहिए।
3. अस्पतालों को संगठन के भीतर सदभावपूर्ण संबंध बनाए रखना चाहिए और इसे बढ़ावा देना चाहिए ताकि रोगियों का सफल इलाज और उनकी देखभाल की जा सके।
4. अस्पतालों को व्यक्ति विशेष के धार्मिक रीति रिवाजों एवं प्रथाओं की सराहना और उनका सम्मान करना चाहिए।

5. यथासंभव, अस्पतालों को शैक्षिक परियोजनाएं चलानी चाहिए, अनुसंधान (शोध) को संवर्धित करना चाहिए और सामुदायिक रोग निवारण कार्यकलापों को बढ़ावा देना चाहिए।

6. अस्पतालों को दूसरे अस्पतालों सरकारी एवं गैर-सरकारी स्वास्थ्य एवं कल्याण एजेंसियों तथा राष्ट्रीय स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाले अन्य मान्यता प्राप्त संगठनों का सहयोग करना चाहिए।

7. अस्पतालों को जनता को अपने कार्य की तथ्यपरक जानकारी देने के साथ-साथ दूसरे अस्पतालों एवं संबंधित संगठनों की निन्दा किए बगैर उपलब्धियों एवं लक्ष्यों/उद्देश्यों का निर्वचन करना चाहिए।

8. अस्पतालों को प्रत्येक प्रभावी पद्धति में सक्रिय सहयोग एवं प्रोत्साहन देना चाहिए जिससे उन पर बीमारी के कारण अत्यधिक वित्तीय बोझ नहीं पड़े।

9. अस्पतालों को अपने सभी व्यावसायिक संबंधों में ईमानदार और निष्पक्ष होना चाहिए।

10. अस्पतालों को नीतियां, कार्मिक कार्यकलाप में उत्तरोत्तर उन्मुख होना चाहिए और अद्यतन उपस्कर, पद्धति तथा कार्यनिष्पादन के मानक को बनाए रखना चाहिए।

अस्पताल के कार्य संबंधित व्यक्तियों को संस्थान की गरिमा और सम्मान को बनाए रखने और अपनी उपयोगिता के क्षेत्र में नीतिगत व्यवहार को अशुण्ण रखने की हर संभव कोशिश करनी चाहिए। इसलिए दूसरे संस्थानों की कोई निन्दा नहीं होनी चाहिए। सभी एक ही लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में प्रयासरत हैं।

दूसरे, अस्पताल की आलोचना करने से केवल उस संस्थान से जनता का विश्वास ही नहीं उठ जाता है बल्कि कुल मिलाकर सभी अस्पतालों से उनका भरोसा उठ जाता है। लोगों का विश्वास बढ़ाने और प्रत्येक अस्पताल की सेवा-गुणवत्ता बढ़ाने के लिए अस्पतालों के बीच सहयोग तथा सर्वोच्च नीतिगत मानकों का पालन अत्यावश्यक है।

3.7.1 प्रबंधक और अस्पताल संबंधी नीति

अस्पताल में इलाज के प्रावधान का प्रबंधन सभी क्षेत्रों की सूची में सबसे ऊपर है, जहां नैतिक मूल्यों से सर्वाधिक प्रभावी ढंग से निर्णय लिए जाते हैं। अस्पतालों में प्रबंधन के इस आयाम को खोना, जैसा कि वर्तमान समय में बहुत से किफायती मॉडल बताते हैं इससे बीमार व्यक्तियों की देख रेख में विध्न आने के साथ-साथ लोगों के स्वास्थ्य की भी रक्षा नहीं हो पाती है। विवेकपूर्ण ढंग से अस्पताल में देख-रेख में अकुशलता निश्चित रुप से नहीं होनी चाहिए। बर्बादी कोई अच्छी बात नहीं है। क्या लागत प्रभावी है और क्या लागत प्रभावी नहीं है इसका निर्णय करते समय अस्पताल में जनसाधारण की देखभाल करने के समग्र उद्देश्य को नजर अंदाज करना आसान है। कई बार, अस्पताल की दक्षता से देखभाल करनेवाले परिवारों के ऊपर अनावश्यक अनुचित बोझ डाल सकता है अथवा सामुदायिक संसाधनों पर असंभव दबाब डाल सकता है जिससे रोगी के इलाज की अ वधारणा जोखिम में पड़ जाती है। जबकि, चिकित्सीय-प्रौद्योगिकी की उन्नति होती है तो रोगी के प्रति मानवीय व्यवहार की और अधिक आवश्यकता महसूस होती है। यद्यपि प्रबंधकों को इस बात पर ि वचार करना चाहिए कि सीमित संसाधन होने पर किस प्रकार प्रबंधन करना चाहिए। प्रबंधकों को इस पर निश्चित रुप से उचित रुप से विचार करना चाहिए।

क. व्यक्ति विशेष (रोगियों और पेशेवरों) के प्रति सम्मान
ख. उत्कृष्टता
ग. ग्राहक संतुष्टि

चार मार्गदर्शी सिद्धान्तों के बारे में चिकित्सा नीतिशास्त्र में काफी कुछ कहा गया है। इसके साथ, इनमें व्यक्तियों का आदर करने के बारे में जानकारी का खुलासा किया गया है। ये सिद्धान्त हैं स्वावयत्ता, सदभाव, ईर्ष्याभाव का अभाव, और न्याय। यह समझना भूल होगी कि इन सिद्धान्तों को लागू करने से प्रबंधन से जुड़ी सभी उलझनों का निवारण हो जाएगा। वस्तुतः एक अथवा उससे अधिक द्वन्द्व और लागत मूल्य बरकार रखने के लक्ष्य से प्रबंधन की समस्याएं उत्पन्न होगी। जबकि उन्नत प्रौद्योगिकी के चलते अस्पताल के इलाज में बहुत अधिक सुधार करने की बाध्यता उत्पन्न हो, इन सुधारों के साथ नीतिगत समस्यायें भी उत्पन्न होती है, जिससे समाधान नहीं हो पाता है।

अधिक प्रौद्योगिकी विकसित होने से और अधिक जटिल और नैतिक मुद्दे उत्पन्न हो जाते हैं। प्रबंधकों के विभिन्न कार्यकलापों को देखते हुए, स्वास्थ्य देखभाल (हेल्थ केयर) अस्पताल संबंधी देखभाल (हॉस्पीटल केयर) में नीति के सभी मुद्दे पर कानूनी पक्षों का बहुत अधिक असर होता है। सभी प्रकार के अवरोधों और विचार-विमर्शों के बावजूद अस्पतालों के प्रबंधन कार्य का यह कर्तव्य है कि वह मेडिकल स्टाफ के उचित चयन, अस्पताल के भीतर मेडिकल प्रैक्टिस में नीतिगत पक्षों को प्र ाथमिकता दें और यह देखें कि धन के चलते गरीब और निर्धन का हित जोखिम में नहीं पडे और सभी प्रौद्योगिक बदलाव होने के बाबजूद, रोगी के मामले में मानवीय पक्षों को बरकरार रखा जाए। उन्हें स्वयं चिकित्सा क्षेत्र के भीतर नीतिगत विचार के विभिन्न पक्षों का प्रचार-प्रसार और इनमें सहयोग करना चाहिए।

3.7.2 अस्पतालों में नीतिगत समिति

अस्पताल के भीतर अनेक अन्य समितियों की ही तरह, नीतिगत विषय पर सलाह देने के लिए एक नीति-विषयक समिति बनाई जानी चाहिए। अब ऐसे सभी अस्पतालों और संस्थानों में इनकी अपेक्षा की जाती है, जहां नैदानिक अनुसंधान किया जाता है। (अमेरिका में इन्हें इंस्टीट्यूसन रिव्यू कमेटी के नाम से जाना जाता है) इस नीति विषयक अथवा जैव चिकित्सीय नीतिगत समिति ि वषय के क्षेत्र में मौजूदा स्थिति एवं गतिविधियों की जानकारी रखने के लिए जिम्मेवार होंगे और तब समिति अस्पताल के विशिष्ट मामले में सलाह देने के लिए तैयार रहेगी। नीति विषयक समिति के गठन में विभिन्न क्षेत्रों के कार्मिकों को शामिल किया जाना चाहिए। सदस्यों में फिजीशियन, नर्स, पादरी, समाज सेवियों के साथ-साथ समुदाय के बाहर के भी किसी एक व्यक्ति को शामिल किया जाना चाहिए। संबंधित मुद्दों पर विचार-विमर्श करने के लिए समिति की नियमित बैठक होनी चाहिए।

नीतिगत सलाह जिसमें अपेक्षित हो, ऐसे समिति के विशिष्ट मामले भेजे जाते हैं। इन मामलों से सदस्यों का ध्यान अस्पताल द्वारा दी गई सेवा की ओर आकर्षित करने में मदद मिलती है। नीति-ि वषयक समिति के समक्ष लाए जाने वाले कई मामलों में सामान्य सिद्धान्त भी अन्तर्ग्रस्त हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, ऐसा मामला जहां रोगी के बारे में समिति से यह राय लेनी हो कि असाध्य रोग से पीड़ित रोगी का इलाज शुरु करे या नहीं। चिकित्सक फिजीशियन सहायक परामर्श की प्रत्याशा में समिति से संपर्क करता है। वह ऐसा महसूस करता है कि वह अभी भी अंतिम चिकित्सा दायित्व को बनाए हुए है फिर भी ऐसे जानकार व्यक्तियों के समूह से अपेक्षाकृत अधिक वस्तुपरक जानकारी प्राप्त करने के लिए वो इच्छुक है यद्यपि वे सहानूभूतिपूर्ण रवैया रखते हैं, लेकिन समिति के सदस्य रोगी के साथ नजदीकी से नहीं जुड़े होते हैं।

खासतौर पर दिलचस्प पहलू नीतिगत राउन्ड का है। समिति विशिष्ट सेवा के कर्मचारियों, जैसे गहन चिकित्सा (इन्टेसिव केयर) यूनिट के कर्मचारियों के साथ बैठक करती है और दैनिक आधार पर उत्पन्न होने वाले नीतिगत मुद्दों पर विचार-विमर्श किया जाता है। किसी व्यक्ति विशेष स्टाफ कर्मचारियों को न केवल अपनी चिन्ताओं को व्यक्त करने का मौका मिलता है, बल्कि समिति की जानकारी में भी अभिवृद्धि होती है।

नीतिगत समिति का सर्वाधिक सहायक कार्य बोर्ड, प्रबंधन, कर्मचारी और सामुदायिक सदस्यों को उचित प्रतिनिधित्व द्वारा चर्चा के लिए एक फोरम बनाना है। इन्हीं चर्चाओं के आधार पर समिति ि वभिन्न दृष्टिकोण और नीति विषयक प्रश्नों के विशिष्ट समाधान पर सुझाव दे सकती है इसमें अंतिम निर्णय बोर्ड के ऊपर छोड दिया जाता है।

अधिकांश अनुदान देनेवाले निकायों को साक्ष्य देना पड़ता है कि प्रस्तावित अनुसंधान स्थानीय नीति विषयक समिति द्वारा मंजूर किया जा चुका है। तभी वे वित्त मुहैया कराती हैं। कई बहुत से प्र ास्तुतीकरण नैमित्तिक होते हैं, जिसमें कोई नीति विषयक समस्या नहीं आती हैं किन्तु कभी-कभी नीति विषयक समितियां परियोजना के डिजाइन में बदलाव की सिफारिश कर सकती है, ताकि यह और अधिक नीति सम्मत हो।

3.7.3 प्रायोगिक जांच में रोगी के उपयोग हेतु नई औषधियों के मामले में नीति-विषयक दायित्व

जब कभी भी अस्पताल में ऐसे रोगी होते हैं जिन पर अन्वेषात्मक दवाओं का प्रयोग किया जाता है, तब रोगियों को इस तथ्य की सलाह दी जाती है तथा ऐसी दवा के प्रयोग की प्रकृति के बारे में बताया जाता है। हर चीज बताई जानी चाहिए और ऐसे मामले में सहमति लेने के लिए सहमति फॉर्म का प्रयोग किया जाना चाहिए। इस फॉर्म में रोगी का नाम, अन्वेषणात्मक औषधि की प्र ाकृति के बारे में स्वीकृति और किसी अप्रिय घटना के घटित होने पर इसके लिए जिम्मेदार होने संबंधी स्वीकृति और खासतौर पर हस्ताक्षर अवश्य लिया जाना चाहिए। किसी भी व्यक्ति को उचित जानकारी और उसकी सहमति के बगैर नई दवाएं नहीं दी जानी चाहिए।

प्रायोगिक जांच में रोगियों का प्रयोग हेलसिकी की घोषणा (1975 में संशोधित) से निदेर्शित होता है जिसमें मानवीय पक्षों को शामिल करते हुए चिकित्सकों को मार्गदर्शन करते हुए सिफारिशें की जाती हैं।

मानवीय पक्षों को शामिल करते हुए जैव-चिकित्सीय अनुंसंधान का प्रयोजन डाग्नौस्टिक, केराप्यूटिक, प्रोफाइलैक्टिक प्रक्रियाओं में सुधार करने और रोग के एटियोलोजी तथा पैथेजेनेसिस (रोग का शुरु होना) की समझ होना चाहिए।

चूँकि यह अनवार्य है कि विज्ञान संबंधी जानकारी को आगे बढाने के लिए और मानव की पीड़ा को कम करने के लिए प्रयोगशाला में किए गए प्रायोगिक अध्ययन के परिणामों की जांच की जाए, वर्ल्ड मेडिकल एसोसिएशन ने मानवीय विषयों को शामिल करते हुए चिकित्सीय अनुसंधान में प्र ात्येक चिकित्सक के पथ-प्रदर्शन हेतु निम्नांकित सिफारिशें की हैं। भविष्य में, इनकी समीक्षा की जानी चाहिए। इस बात पर अवश्य जोर दिया जाना चाहिए कि यथा प्रारुपित मानक पूरी दुनिया के सभी चिकित्सकों के लिए केवल मार्गदर्शन मात्र हैं। अलग-अलग देशों के कानूनों के तहत, चिकित्सक किसी आपराधिक, दीवानी और नीति-विषयक उत्तरदायित्वों से उन्मुक्त नहीं है।

I. मौलिक सिद्धान्त

1. मानवीय पक्षों वाले जैव चिकित्सीय अनुसंधान कार्य सामान्यतः स्वीकृति सिद्धान्तों के अनुरुप होना चाहिए और पर्याप्ततः प्रयोगशाला - अध्ययन तथा जन्तुओं पर हुए प्रयोग पर तथा वैज्ञानिक परंपरा के पूर्ण ज्ञान पर आधारित होना चाहिए।

2. मानवीय पक्ष वाले प्रत्येक प्रायोगिक कार्यविधि का डिजाइन और कार्य निष्पादन स्पष्टतः प्र ायोगिक प्रोटोकॉल में प्रतिपादित होना चाहिए जिसे विचारार्थ, टिप्पणी एवं मार्गदर्शन हेतु ि वशेष रुप से बनाई गई समिति को भेजा जाए।

3. मानवीय पक्ष वाले जैव चिकित्सीय अनुसंधान कार्य योग्य वैज्ञानिकों द्वारा नैदानिक दृष्टि से योग्य व्यक्तियों की देख रेख में किया जाना चाहिए। मानवीय पक्ष का दायित्व चिकित्सीय दृष्टि से अर्हक व्यक्ति के ऊपर होना चाहिए और कभी भी यह दायित्व शोध के विषय पर नहीं थोपा जाना चाहिए भले ही इस आशय के बारे में उस महिला/पुरुष रोगी की सहमति ले ली गई हो।

4. मानवीय पक्ष वाले जैव चिकित्सीय शोध परियोजना के बारे में तब तक कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती है, जब तक की इस उद्देश्य का महत्व उस आदमी के संभाव्य अन्तर्निहित जोखिम के अनुपात में नहीं हो।

5. मानवीय पक्ष वाले जैव चिकित्सीय परियोजना को रोगी को होने वाले संभाव्य लाभ और आशंकित जोखिम का ध्यान से हिसाब-किताब करने के बाद ही तैयार किया जाना चाहिए।

6. शोध के विषय की सत्यनिष्ठा को बनाए रखने के अधिकार का निश्चित तौर पर सम्मान किया जाना चाहिए। रोगी की गोपनीयता का आदर करने तथा रोगी की शारीरिक एवं मानसिक दशा तथा उसके व्यक्तित्व पर इसका कोई बुरा असर न पडे, इस बात की पूरी सतर्कता बरती जानी चाहिए।

7. चिकित्सको को तब तक मानव पर शोध कार्य करने से बचना चाहिए, जब तक कि वे इस बात से संतुष्ट नहीं हो कि संभावित खतरे का अनुमान लगाया जा सकता है। यदि संभाव्य लाभ की अपेक्षा खतरा अधिक उत्पन्न होने लगा हो, तो चिकित्सकों को अन्वेषण कार्य बन्द कर देना चाहिए।

8. अपने शोध कार्य के परिणामों के प्रकाशन में चिकित्सक का यह कर्त्तव्य है कि वह ठीक ठीक परिणाम बताए। इस घोषणा में उल्लिखित सिद्धान्तों के अनुसार नहीं किए गए प्रयोगों की रिपोर्ट प्रकाशन के लिए स्वीकार नहीं की जानी चाहिए।

9. मानव पर कोई शोध करने में, प्रत्येक संभाव्य रोगी को इसकी लक्ष्य, पद्धति, प्रत्याशित लाभ और अध्ययन के चलते होने वाले आशंकित खतरे और कठिनाई की जानकारी देनी चाहिए। उस रोगी को इस बात की जानकारी देनी चाहिए कि वह किसी भी समय इस जांच व शोधपरक अध्ययन कार्य से स्चयं को दूर कर सकता है। तब चिकित्सक को अधिमान्यतः सभी मुद्दों पर लिखित रुप में रोगी से मंजूरी लेनी चाहिए।

10. शोध परियोजना के लिए जानकारी देकर सहमति प्राप्त करने के बाद, डाक्टर को विशेष रुप से सतर्क रहना चाहिए कि क्या किसी दबाब के चलते रोगी इस पर राजी हो रहा है। ऐसे मामले में, ऐसे चिकित्सक द्वारा मंजूरी लेने का कार्य किया जाना चाहिए जो अन्वेषण कार्य से संबद्ध नहीं है और अपने कार्यालयीन संबंध में पूर्णतः स्वतंत्र है।

11. विधिक तौर पर अक्षम होने की स्थिति में राष्ट्रीय विधायन के अनुसार कानूनी अधिकार से इस बारे में सहमति लेनी चाहिए। जहां शारीरिक अथवा मानसिक अक्षमता के कारण रोगी की सहमति लेना संभव नहीं हो, अथवा जब रोगी अवयस्क हो, रोगी के उत्तरदायी रिश्तेदार से राष्ट्रीय विधायन के अनुसार अनुमति ली जा सकती है।

12. शोध (प्रोटोकॉल) में समाविष्ट नीति-विषय विचार-विमर्श का विवरण अवश्य होना चाहिए और यह स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए कि मौजूदा घोषणा पत्र में उल्लिखित सिद्धान्तों का अनुपालन किया गया है।

II. प्रोफेशनल देखभाल से संबंद्ध चिकित्सा-अनुसंधान (नैदानिक शोध)

1. रोगी के इलाज में इस समय, चिकित्सक को नई नैदानिक एवं चिकित्सीय (थेराप्यूटिक) उपाय करने में स्वतंत्र होना चाहिए, यदि उनके निर्णय में इससे जीवन की रक्षा करने, फिर से स्वस्थ होने और पीड़ा कम होने की आशा हो।
2. नई पद्धति से सर्वोत्तम नैदानिक (डायग्नोस्टिक) एवं (चिकित्सीय) (थेराप्यूटिक) पद्धतियों की तुलना में कितना संभावित लाभ अथवा खतरा हो सकता है, इसका पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिए।
3. किसी भी चिकित्सीय अध्ययन में, प्रत्येक रोगी को यदि कोई नियंत्रण समूह हो तो उसके सहित सर्वोत्तम सिद्ध नैदानिक एवं चिकित्सीय (थेराप्यूटिक) पद्धति से आश वस्त होना चाहिए।
4. यदि रोगी किसी अध्ययन में अपनी सहभागिता से मना कर देता है तो इससे रोगी और चिकित्सक के संबंध में कोई अन्तर नहीं आना चाहिए।
5. यदि डाक्टर आवश्यक समझे कि रोगी को इस आशय की जानकारी लेकर उसकी मंजूरी ली जाए तो स्वतंत्र समिति को भेजे गए प्रायोगिक प्रोटोकॉल में इस प्रस्ताव के विशिष्ट कारणों का उल्लेख होना चाहिए।
6. डाक्टर अपने प्रोफेशनल देखभाल/चिकित्सा में चिकित्सीय अनुसंधान कार्य शामिल कर सकता है, जिसका लक्ष्य इतनी सीमा तक चिकित्सा ज्ञान प्राप्त करना हो कि इसका रोगी के लिए इसका नैदानिक अथवा चिकित्सीय (थेराप्यूटिक) महत्व हो।

III. मानव संबंधी विषयों पर किया जाने वाला नॉन-थेराप्यूटिक बायोमेडिकल रिसर्च (नॉन-क्लिनिकल बायोमेडिकल रिसर्च)

1. मनुष्यों पर किए गए चिकित्सा-शोध के बिल्कुल वैज्ञानिक प्रयोग में, चिकित्सक का यह कर्तव्य है कि वह उस व्यक्ति के स्वास्थ्य और जीवन की रक्षा का ध्यान रखे, जिस पर शोध किया जा रहा है।
2. रोगियों को इसके लिए इच्छुक होना चाहिए भले ही वे स्वस्थ हों या रोग्रस्त हों जिन पर किए जाने वाले प्रयोग का डिजाइन उनकी बीमारी से संबद्ध नहीं है।
3. यदि शोध के दौरान रोगी को ऐसा लगता है कि इससे उसे हानि हो रही है तो जांचकर्ता को शोध कार्य बन्द कर देना चाहिए।

4. किसी आदमी पर शोध करते समय रोगी के स्वास्थ्य से अधिक विज्ञान और समाज के हितों को प्रधानता नहीं दी जानी चाहिए।

जांच बिन्दु

1. अस्पताल की कार्यप्रणाली के किन क्षेत्रों में नीतिगत विषयों की संहिता अपेक्षित है।
2. किसी अस्पताल-प्रबंधक के लिए चिकित्सीय नीतिशास्त्र का कितना महत्व है और नीति-ि वषयक मानकों के अनुसार अस्पताल का कार्यकरण सुनिश्चित करने के लिए उसे क्या करना चाहिए?
3. अस्पताल के रोगियों पर प्रयोग करते समय, किस प्रकार की विशेष सावधानी रखी जानी चाहिए?

3.8 वर्तमान समय की चिकित्सा-समस्याओं के नीतिगत-विषय

3.8.1 एड्स

आज, कोई भी राष्ट्र एड्स के कुपरिणामों से नहीं बच सकता है। वायरस से पीडित होने वाले व्यक्तियों की तादाद निरंतर बढ रही है। इस क्षेत्र से जुड़ा हुआ कलंक और इसके फैलने में अर्न्तग्रस्त सामाजिक व्यावहारिक पैटर्न से समस्याएं और भी बढ़ जाती हैं। रोगी की असाध्य प्रकृति और रतिजरोग तथा रक्त देने के प्रक्रम में एच.आई.वी. होने से विशेष समस्याएं उत्पन्न होती हैं और इससे अजीब उलझन और कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं। इसमें अंतर्ग्रस्त मुद्दे निम्नानुसार हैं -

1. एड्स रोगियों का इलाज - डाक्टर को एड्स से पीड़ित अथवा एच. आई. वी. से ग्रस्त रोगियों का इलाज नहीं करने का कोई हक नहीं है। बहुत अधिक विवाद तब उत्पन्न होता है जब डाक्टर सहित हेल्थ प्रोफेशनल अज्ञात/अवर्णनीय भय के कारण ऐसे रोगियों की जांच करने के लिए तैयार नहीं होते हैं। रोगी बहुत अधिक दुःख और निराशा की हालत में चला जाता है। वह किसी से मदद अथवा सलाह मांगने के लिए राजी नहीं होता है।

2. अन्य स्वास्थ्य कर्मी के सामने खुलासा करना - एड्स की संभावना वाले मामले में इस रोग की संक्रमणशीलता के बारे में अन्य स्वास्थ्य कर्मियों के बीच विवाद रहा है इसमें संभाव्य रक्त जांच की वैधता शामिल है, जहां रोगी को सर्जिकल ऑपरेशन अथवा आक्रामक नैदानिक अथवा थेराप्यूटिक प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। यदि शल्य चिकित्सक स्वयं या स्वास्थ्य टीम के अन्य सदस्य स्वयं छेदन का कार्य करते हैं या आंतत्रेतर रुप से रक्त या शरीर के द्रव प्रविष्ट करते हैं तो वे भी कम खतरा मोल नहीं लेते। इसके विपरीत, एच.आई.वी. से ग्रस्त डाक्टर के जरिए रोगियों को इस रोग से ग्रस्त होने की आशंका बनी रहती है।

रोगियों के रक्त की स्क्रीनिंग - कुछ प्राधिकारियों का मानना है कि रोगियों की एच.आई.वी. परीक्षण के लिए विशिष्ट सहमति लिए बगैर इसके वैयक्तिक एवं सामाजिक परिणाम भयानक हो सकते हैं। अन्य प्रयोजनों से लिए गए सैम्पल, जैसा कि प्रसव पूर्व निदानात्मक रक्तदान इत्यादि में होता है, दूसरी समस्याएं उत्पन्न होती हैं। यद्यपि व्यक्तिगत तौर पर रोगियों की कोई निन्दा नहीं की जाती है फिर भी एच.आई.वी. ग्रस्त व्यक्तियों की पहचान करने का भी कोई तरीका नहीं है। ऐसा अनुभव किया जाता है कि ऐसी कोई भी जांच रोगी की सहमति से की जानी चाहिए और इस बात की हर संभव कोशिश की जानी चाहिए कि रोगी के नाम का खुलासा नहीं हो।

व्यक्ति विशेष बनाम सामाजिक उत्तरदायित्व - यह ऐसे लोगों की सूचना देने के बारे में, जिन्हें स वेंक्षण में एच.आई.वी. पोजिटीव बताया जाता है। सामान्यतः सामाजिक हित में और खास कर व्यक्ति विशेष के हित में है उन्हें इसकी सूचना दी जाए। संबंधित व्यक्ति द्वारा अपने रोग के बारे में केवल जानकारी देने से कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता है, क्योंकि इसका खुलासा करने से उत्पन्न होने वाले दुःख एवं अन्य आरोपों को हमें नहीं भूलना चाहिए। इस मुद्दे की जानकारी उस व्यक्ति के परिवार (खासकर पति/पत्नी) और दोस्तों को कैसे दी जाए, ऐसे प्रश्न, कि व्यक्ति इस बात की मंजूरी देता है अथवा नहीं, इस बात पर समाज में दूसरों के बारे में खतरा होने पर भी व्यापक विचार-विमर्श करने की आवश्यकता है। हाल ही में, डाक्टर येपथॉमी बनाम अपोलो अस्पताल, चेन्नै के महत्वपूर्ण मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने फैसला दिया है कि भावी पति/पत्नी को अपने भावी जीवन साथी के एच.आई.वी.की स्थिति के बारे में जानने का अधिकार है और संबंधित अस्पताल द्वारा इसका खुलासा करना गोपनीयता का उल्लंघन नहीं होगा।

यदि डॉक्टर स्वास्थ्य सेवा कर्मी एच.आई.वी. से ग्रस्त हो तो क्या होगा? फलोरिडा में एच.आई.वी. के पांच मामलों का पता लगने के बाद उनके इस वायरस से ग्रस्त होने के स्रोत का पता लगाने पर मालूम हुआ कि इनके दन्त शल्य चिकित्सक के एच.आई.वी. ग्रस्त होने के कारण यह रोग संक्रमित हुआ। इससे अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन और अमेरिकन डेन्टल एसोसिएशन ने यह उल्लेख करते हुए मार्ग निर्देश जारी किया कि चिकित्सकों (फिजीशियनों और दन्त चिकित्सकों का यह नैतिक दायित्व है कि या तो अपने रोगियों को स्वयं के एच.आई.वी. पॉजिटीव होने का खुलासा करेगा या आक्रमणकारी प्रक्रिया रोके। कानूनी मानकों से भी पता चलता है कि स्वास्थ्य सेवा कर्मी से यदि रोगियों को जोखिम उत्पन्न होता है, तो वे अपने एच.आई.वी.स्टेटस का खुलासा करें।

रक्तदान : पेशेवर रक्तदान करनेवालों को हतोत्साहित करना लोक स्वास्थ्य के लिए नीतिसम्मत और बेहतर है। नीतिगत मुद्दे यहीं समाप्त नहीं हो जाते हैं अन्य मुद्दे इस प्रकार हैं

क. क्या संक्रमित रक्त को नष्ट करना काफी है?
ख. क्या रक्त दान करने वाले को उनके एच.आई.वी से ग्रस्त होने की जानकारी नहीं देनी चाहिए?
ग. पति-पत्नी यौन साथी अथवा संतान को रोग से संक्रमित करने के मामले में इनकी क्या भूमिका होगी?
घ. इस बारे में स्वास्थ्य कर्मियों की और क्या भूमिका है?

उपर्युक्त मुद्दे समाधान की बजाय मुख्यतः प्रश्न है और नीतिगत पक्षों से गंभीरता और बढ़ जाती है जिसका अनोखापन इस तथ्य से उत्पन्न होता है कि इस घातक बीमारी को दूर करने और इससे बचने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति सामान्य है किन्तु विशिष्ट प्रोफाइल लैक्सिस का इलाज अभी भी अदृश्य है। यही कहा जा सकता है कि ष्अच्छी दवा की प्रैक्टिस करो और बाद में निश्चित रुप से अच्छी नीतियां स्थापित हो जाएंगी ष एड्स के नीतिगत मुद्दे पर बहुत अधिक वाद-विवाद हो रहा है। बहुत से लेखकों का यह दृष्टिकोण है कि समाज का हित सर्वोपरि है। उनका निष्कर्ष है।

1. रोगी को सच्चाई बता दो और यदि वह अपने पति/पत्नी/पार्टनर को बताने से मना करता है शायद उन्हें कहा जा सकता है कि उन्हें सचमुच खतरा है अथवा आदर्श के तौर पर उन दोनों को एक साथ रखना है।

2. एच.आई.वी. से पीड़ित लोगों का इलाज करने के लिए तैयार रहो लेकिन ऑपरेशन से पूर्व जाँच पर जोड़ दो ताकि कर्मचारी की स्वावयत्तता का उल्लंघन नहीं हो।

3. रोग के संक्रमण को फैलने से रोकने के लिए समझाने बुझाने की सभी पद्धतियों का प्रयोग करें (अलग करना संभव नहीं हो) और स्वस्थ लोगों को बताएं कि किस प्रकार संक्रमण से बचा जा सकता है जैसा कि सरकारी प्रचार माध्यम के द्वारा पहले ही बहुत कुछ किया जा चुका है।

3.8.2 गर्भपात

i. गर्भपात (एम.टी.पी.) अधिनियमः विश्व के कई भागों में दबाव में गर्भपात कराने संबंधी कानून में थोड़ी ढ़ील दी गई है। भारत में, गर्भपात (एम.टी.पी.) अधिनियम जिसे 1972 में लागू किया गया था, उन परिस्थितियों का विनिर्देशन किया गया है, जिसके तहत गर्भपात कराया जा सकता है, कौन से व्यक्ति गर्भपात कर सकते हैं और साथ ही उन स्थानों का भी उल्लेख किया गया है, जहां यह कार्य किया जा सकता है। मोटे तौर पर, वह अधिनियम, जो मुख्यतः परिवार कल्याण उपाय के रुप में बनाया गया इसमें गर्भाधान के 20 सप्ताह तक चिकित्सीय विधि से कई आधार पर गर्भपात की अनुमति है जो कि या तो चिकित्सीय आधार (गर्भाधान के दौरान माँ के स्वास्थ्य की गंभीर क्षति अथवा उसके जीवन को खतरा होना) सामाजिक (जैसे-गर्भनिरोधक दवा का काम नहीं करना), यूजेनिक (असामान्य शिशु का जोखिम) अथवा मानवीय (बलात्कार आधार पर गर्भ होता है) आधार पर अधिनियम में गर्भपात के लिए केवल एक ही डाक्टर जिसे प्रसूति विज्ञान के क्षेत्र में अनुभव हो, गर्भपात कराने के लिए प्राधिकृत किया जा सकता है, साथ ही साथ इसमें यह भी निर्धारित किया गया है कि इस प्रयोजनार्थ केवल किसी सरकारी अस्पताल अथवा सरकारी मान्यता प्राप्त किसी दूसरी जगह कराया जा सकता है। अभिलेखों की गोपनीयता बनाए रखने के बारे में भी सरकार द्वारा निर्देश दिए गए हैं।

तथापि, गर्भपात संबंधी कानून में ढ़ील देने के बावजूद गर्भपात के संबंध में कई नीति-ि वषयक बातों पर विचार किया जाता है, जिनकी नीचे चर्चा की गई है।

ii) नीति विषयक विचार - गर्भपात के बारे में होनेवाले वाद-विवाद में तर्क के ध्रुवीकरण की प्र वृति रहती है। एक तरफा मुहावरे यथा ष निर्दोष की हत्या ष आदि का प्रयोग किया जाता है, जबकि दूसरी तरफ महिलाओं के अधिकार की बात की जाती है।

यह दृष्टिकोण के मानवीय भ्रुणावस्था में मानवीय जीवन का बचाव किया जाना चाहिए। यह ि वचारधारा चिकित्सा-विज्ञान के आरंभिक इतिहास में भी मौजूद थी। हिप्पोक्रेट की शपथ में कहा गया है ''मैं. किसी को भी जानलेवा दवा नहीं दूँगा भले ही मुझसे ऐसा करने के लिए कहा जाय, न ही मैं ऐसी सलाह दूँगा और खासकर मैं किसी महिला की गर्भपात कराने में कोई मदद नहीं करुँगा।'' आधुनिक जेनेवा अभिसमय की संहिता में यह भावना व्यक्त होती है लेकिन उसमें उल्लिखित शब्दों में महत्वपूर्ण अंतर है। ''मैं गर्भाधान के समय से ही मानव जीवन के प्रति अत्यधिक सम्मान का भाव रखूँगा'' यहां तक कि, परवर्ती संहिता में बहुत ही सतर्कतापूर्वक शब्दों के चयन के बाबजूद भी संहिता में भ्रूणावस्था में जीवन को निश्चित स्टेटस दिया गया है और इसमें इस संभावना से इन्कार किया गया है कि जानबूझकर/स्वेच्छा से इससे बचा जा सकता है। जिस मत में प्रत्यक्ष गर्भपात को सभी परिस्थितियों में नैतिक तौर पर गलत बताया गया है, ऐसे में दावा किया जाता है कि भ्रूण अवस्था में होने वाले प्राणी को भी जीने का उतना ही अधिकार है जितना किसी दूसरे व्यक्ति को। रोम के कैथोलिक चर्च के अधिकारिक घोषणाओं में इस दृष्टिकोण को निरंतर प्रस्तुत किया जाता है। कुछ समकालिक कैथोलिक लेखकों ने ऑफिशियल कोचिंग (हैरिंग 1974) को फिर से बनाने की मांग की है लेकिन इस मौलिक दृष्टिकोण से हटे बिना ऐसा किया गया है कि भ्रूण के जीवन का आवश्यक रु प से बचाव और सम्मान किया जाना चाहिए। लेकिन, गर्भधारण एवं गर्भपूरा होने की प्रक्रिया के प्र ाति बिना किसी धार्मिक मान्यताओं को प्रत्यावर्तित करते हुए बहुत से चिकित्सकों एवं परिचारिकाओं का अभी भी मानना है कि यह माँ के शरीर के भीतर केवल कोशिकाओं का एक बंडल है जिसे उसके अनुरोध पर हटाया जा सकता है। स्पष्टतः व्यवहार्य/जीवित भ्रूण की स्थिति होती है, जिसे फौजदारी कानून में मान्यता प्रदान की गई है।

स्वास्थ्य के कारणों से किए जाने वाले गर्भपात के बारे में अलग अलग देश में अलग अलग कानून बने हैं, जो अत्यधिक उदार होने के प्रति पारंपरिक दृष्टिकोण पर आधारित हैं से लेकर अत्यधिक उदारवादी हैं। भ्रूण को नष्ट करने का औचित्य कई तर्कों पर आधारित हैः

1. स्वास्थ्य और/अथवा माँ की जीवन-रक्षा अथवा दूसरे आश्रित बच्चे का स्वास्थ्य भ्रूण के संभाव्य जीवन से अधिक महत्वपूर्ण हो;
2. भ्रूण के जीवन की अनुमानित कोटि इतनी निम्न प्रकृति की है कि बेहतर है कि इसे यह जी वन नहीं मिले;
3. कतिपय परिस्थितियों में गर्भपात की अनुमति देने से समाज की खुशहाली में सुधार होता है, उदाहरण के लिए बैंक स्ट्रीट में गर्भपात जायज है अथवा जब जनसंख्या नीतियों से संकेत मिलता हो कि जन्म दर कम करने की जरु रत है। इन तीनों तर्कों में ''थेराप्यूटिक'' शब्द का प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में किया जाता है। पहले मामले में रोगी मां है, दूसरे में भ्रूण है और तीसरे तर्क में पूरा समाज है।

गर्भपात की नैतिकता के दो दृष्टिकोण से कठिनाईयां दूर हुई प्रतीत होती हैं। प्राकृतिक कानून के ऐसे स्वरु प, जिसमें भ्रूण को पूर्ण व्यक्तित्व की संज्ञा दी जाती है इसमें इन्हें नष्ट करने के किसी आधार को मान्यता नहीं दी गई है भले ही इसका तात्पर्य यह है कि माँ की जान जा सकती है। इसके विपरीत समाज को हित पहुँचाने वाले कुछ फोरम माँ के अनुरोध

पर गर्भपात का समर्थन करेंगे जब तक यह साफ साफ दर्शाया नहीं जा सके कि इससे अधिकांश जनसंख्या पर प्रतिकुल असर पड़ेगा। जहां तक प्राकृतिक कानून के सिद्धान्त का संबंध है, यह देखना कठिन है कि माँ और भ्रूण दोनों के जीवन को समान महत्व कैसे दिया जा सकता है, इससे कहीं अधिक भ्रूण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, जहां तक समाजिक तात्कालिता के मामले में गर्भपात के लिए तर्क का संबंध है, अहम् प्रश्न यह है कि इस बात को कैसे परिभाषित किया जाएगा कि यह समाज के लिए लाभप्रद है। क्या आंशिक रुप से उत्पन्न मानव जीवन को नष्ट करने के मामले में स्वतंत्र विकल्प देने की अनुमति देने में समाज का कल्याण होगा? भ्रूण के प्रति सम्मान को अवश्य ही मतिभ्रम वाली भावना से अधिक व्यक्ति विशेष की स्वतंत्रता में अवरोधक अथवा समाज के आर्थिक लाभ में बाधक माना जाना चाहिए। यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि क्या भ्रूण को सिर्फ मातृक उतक को एक पृथक व्यक्तित्व के रुप में विकसित होने से रोकना है। यदि किसी अर्थ में, भ्रूण को एक पूर्ण मानव का दर्जा दिया जाता है तब इसके प्रति बिलकुल उपेक्षा भाव से मान वीय मूल्यों की सिद्धि नहीं होती है।

उपयोगितावाद का आशोधित स्वरुप इन दोनों मतों के मध्य एक मध्यम मार्ग निकालने की कोशिश कर सकता है। इसका तर्क होगा कि अपेक्षाकृत उदारवादी कानून बनाकर जिसमें दुरुपयोग पर नियंत्रण रखा जाए, सभी पक्षों के हितों के बीच किसी समझोते पर पहुँचा जा सकता है। इसमें भ्रूण की आकस्मिक बर्बादी को रोका जाना है किन्तु साथ ही, माँ या शिशु पर पड़ने वाले प्रभावों पर अत्याधिक बल देता है। व्यावहारिक आपत्तियों का प्र ातिकूल परिणामों की भविष्यवाणी के साथ संबंध स्थापित करना कठिन है। कई मामलों में, चिकित्सक के समक्ष मूल्यांकन हेतु मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक कारकों का एक जटिल स्- वरुप प्रस्तुत किया जा सकता है। जब तक वह स्वास्थ्य के प्रति खतरा होने के बारे में सख्ती से कोई चिकित्सीय निर्वचन नहीं करता है और केवल शारीरिक तौर पर बीमार लोगों से आवेदन पत्र स्वीकार करता है अथवा साफ घोषित किए गए मनोवैज्ञानिक विकृति वाले व्यक्ति का आवेदन स्वीकार कर लेता है, उसे यह निर्णय करने की समस्या आएगी कि रोगी के जोखिम का मूल्यांकन कैसे किया जाए। इस तरह के मामले में, यह साधारण मामला कदापि नहीं होगा। इस बात का अंदाजा लगाना कि अवांछित बच्चे के परिवार वालों का क्या होगा, कई मामले में आसार नहीं होता है। शायद सबसे अधिक कठिनाई यह निर्णय करने में आती है कि गर्भवती महिला की जीवन शैली में और उसकी भावी योजनाओं का क्या होगा। इससे उसके शैक्षिक जीवन में विध्न आ सकता है, नौकरी छोड़नी पड़ सकती है, अथ वा अवैध शिशु को जन्म देने से सामाजिक अपमान सहना पड़ सकता है। अनुचित मानसिक तनाव आदि हो सकता है। अंतिम रुप से सोच-विचार किया जाता है यदि इनका जन्म ऐसी स्थिति में होता है जब माँ उसकी देख रेख नहीं कर सकती है और न ही कर पाएगी। ष्उपयोगितावादी ष दृष्टिकोण पर सैद्धान्तिक विरोध इस अवधारणा को लेकर है कि जिन कार्यों के परिणामस्वरुप खुशी बढ़ती है और दुःख कम होता है दोनों ही समान रुप से उचित हैं भले ही सर्वाधिक खुशी संबंधी पूर्वानुमान ठीक हो, कुछ सिद्धान्तवादी उस कानून का विरोध करेंगे जिसमें सुविधा अथवा उपयोगिता के कारण संभावित मानव जीवन के ि वनाश को अनुमति दी जाती हो तथा इस संबंध में यह तर्क देंगे कि कानून में जीवन की पि

वत्रता के मूलभूत नैतिक मूल्य को नजर अंदाज नहीं करना चाहिए। यह आपति मूल भूत नीतिगत अवधारणा की दिशा में युगांतकारी परिवर्तन दर्शाता है।

ऐसा देखा गया है कि आधुनिक समाज में गर्भपात से संबंधित खंडों की उपेक्षा की गई है क्योंकि समाज के एक बड़े हिस्से के दृष्टिकोण में बदलाव आया है और अब यह परंपरा अथवा संहिता में निहित मूल्यों को स्वीकार नहीं किया जाता है। जब अन्तर्निहित

आधार पर सहमति नहीं होती है तब उत्पन्न होने वाली संहिताओं की कमजोरियों को ओस्लों की वूली घोषणा में दर्शाया गया है। एक मात्र महत्वपूर्ण कथन इस प्रकार हैः

1. गर्भपात केवल चिकित्सीय उपाय के रुप में किया जाना चाहिए (और यह काफी अस्पष्ट है)

2. गर्भपात कराने संबंधी निर्णय का अनुमोदन सामान्यतः कम से कम दो चिकित्सकों द्वारा कराया जाना चाहिए जो अपने क्षेत्र में अपनी क्षमता के लिए मशहूर हों। (इस संबंध में यह समझौता (करारनामा) किया जाना चाहिए लेकिन इसमें नीति की बजाय उन तरीकों के बारे में अधिक जानकारी दी जाती है जिस तरह से कि नीतिगत बातों को व्यवहार में उतारा जाता है।

3.8.3 यूथानैसिया

कानून में विहित है कि रोगी की देखरेख में सभी पर्याप्त कुशलता/दक्षता का प्रयोग किया जाना चाहिए लेकिन शायद ही कभी इलाज शब्द को इस पूर्वानुमान से ऊपर माना गया है कि चिकित्सक जीवन की सुरक्षा यथासंभव शरीर के बहुत से दूसरे अंगों की ही तरह करेगा। अपने पूरे जीवन भर चिकित्सक रोग को ठीक करने के लिए, मेहनत करता है चोट कम करने के लिए, विकलांगता दूर करने के लिए और मौत को रोकने के लिए मेहनत करता रहता है। कानूनी कार्रवाई और मिथ्या आरोप भले ही दुर्भावना से लगाए गए हों, इनके भय से प्रत्येक बीमारी का इलाज करने, हर नई समस्याओं को पूरा करने, प्रकार्यात्मक विधि अपनाने और जीवन काल बढ़ाने की अतिरिक्त अभिप्रेरणा मिलती है। वे लोग जिन्होंने ऊपर मन से, यह दलील दी है कि चिकित्सक को एक सेकेण्ड में इसका उल्टा करना चाहिए और जीवन अवधि कम कर देना चाहिए, यहां तक कि रोगी को मार भी देना चाहिए, उन्होंने डाक्टर की हिचकिचाहट, अनिर्णायक मानसिक स्थिति और स्वाभाविक घृणा की कभी कल्पना भी नहीं की होगी।

मौजूदा कानून के तहत, कतिपय संकीर्ण-परिस्थितियों को छोड़कर स्वैच्छिक यूथैनैसिया को रोगी के मामले में आत्महत्या माना जाएगा, जो सहमति देता है तथा इलाज करता है, चिकित्सक के मामले में हत्या माना जाएगा जो यहां तक कि उदारवादी दृष्टिकोण से भी, अधिकांश वकील कहेंगे

कि यह स्थिति डॉक्टर द्वारा की गई मानव हत्या से कम नहीं होगी, न्याय विधान के अनुसार इसका दंड हत्या के समान आजीवन कारावास तक हो सकता है।

यूथैनैसिया कभी भी काफी लंबे अरसे तक फोकस से अलग नहीं रहता है। निःसंदेह, यूथैनेसीया का वाद विवाद नीति-विषयक महत्व को लेकर है किन्तु इसकी विभिन्न परिभाषाओं के बारे में मतिभ्रम व्याप्त है। हालांकि विविधि परिभाषाएं दी जाती हैं। हम अपनी परिभाषा को चिकित्सक अथवा नर्स द्वारा रोगी अथवा उसके द्वारा नामित किसी संबंधी के अनुरोध पर किसी रोगी की जिन्दगी को जानबूझकर तत्काल समाप्त करने के रुप में लेंगे।

दो नीतिगत पहलू लक्ष्य और स्वायतता है। चिकित्सक इलाज का एक मूलभूत लक्ष्य कल्याण है, जहां रोगी को जान से मारने को शायद ही क्षति पहुँचाना समझा जाएगा। लेकिन दूसरी और इलाज का लक्ष्य दुःखदर्द से राहत पहुँचाना है और रोगी के कष्ट का अन्त करके उसकी पीड़ा को कम करना लाभकारी माना जाएगा। दूसरा घटक - स्वायत्तता -चिकित्सकों, रोगियों और रिश्तेदारों को प्रभावित करता है। जैसा कि हम जानते हैं रोगी को इलाज नहीं कराने का अधिकार है, क्या यह स्वायत्ता यूथैनेसिया के मामले तक हो सकती है। यह एक नीतिगत प्रश्न चिह्न है।

धर्मविदों के लिए सामान्य नीतिगत सिद्धान्त यह होगा कि जानबूझकर किसी निर्दोष की जान लेना दोष है और उन्हें दर्द और पीड़ा को नियंत्रित करने का कोई दूसरा साधन ढूँढना चाहिए (जिसे उन्होंने हौस्पाइस मूवमेंट के माध्यम से प्रदर्शित किया है) कुछ लोगों का मत तो यहां तक हो सकता है कि जिस किसी भी चीज से जीवन काल कम होता है वह गलत है। नास्तिकों के लिए, नीतिगत सिद्धान्त यह है कि उसे अपने स्वयं का जीवन समाप्त करने का अधिकार है, बशर्ते कि इससे दूसरे व्यक्ति को किसी प्रकार की क्षति या कष्ट नहीं पहुँचता हो।

सभी नीतिगत संहिताओं में स्पष्ट तथा परोक्ष रुप से यूथेनैसिया को नकारा गया है। यूथैनैसिया विधेयक का प्रारुप बनाने की कोशिश करनेवालों में से कुछ लोगों ने महसूस किया है कि सुरक्षा/बचाव का प्रावधान करना कितना कठिन है। यदि यूथैनैसिया के लिए दर्दनाक और असाध्य स्थितियों का आधार दिया जाता है, तब हम आर्थिर्टिस (गठिया) के रोग से कैसे निपटेंगे। इस संबंध में किसी भी कानून में चिकित्सक के विवेक की अवश्य रक्षा होनी चाहिए। वस्तुतः यदि कोई कानून बनाया जाए तो सर्वोंतम हल प्रशिक्षित तकनीशियन और सलाहकार वकीलों को लेकर यूथेनैसिया केन्द्र बनाया जाना चाहिए और इसे सामान्य चिकित्सा से बिलकुल अलग रखा जाना चाहिए।

मानवतावादियों ने इस बारे में कोई स्पष्ट आपत्ति नहीं की है बशर्ते कि कतिपय रक्षोपाय बरते जाएं। लेकिन धर्मज्ञों में इस तथ्य को लेकर विरोधाभास है कि एक ओर जान से मारना और दूसरी ओर पीड़ा से मुक्ति। वह इस विरोधाभास का निराकरण दर्द से मुक्ति दिलाने के लिए नई और बेहतर पद्धतियों की खोज करके कर सकता है। यदि दर्द से मुक्ति से जीवन अवधि कम नहीं होती है, जैसा कि आमतौर पर नहीं होता है तो वह दोहरे प्रभाव के सिद्धान्त का सहारा लेता है। यदि दवा की पूरी खुराक के बाद भी सारे लक्ष्ण समाप्त नहीं होते, तब भी वह फिर भी जानबूझकर मारने से अधिक जीवन के परिक्षण को प्राथमिकता दी जाएगी।

यूथानैसिया के बारे में एक चिन्ताजनक विषय यह है कि यह ढलान का प्रारंभिक बिन्दु है - ि वकट परिस्थितियों में स्वैच्छिक यूथैनासिया अनुरोध पर किया गया यूथैनैसिया हो जाएगा। इससे बड़ी चिन्ता इस बात को लेकर है कि स्वैच्छिक यूथैनैसिया विकलांग एवं वयस्क लोगों के लिए अनिवार्य होगी। नीदरलैंड में ष्यूथैनेसियाष विधि मान्य है।

3.8.4 बंध्यकरण (स्टेरीलाइजेशन)

यह एक प्रकार का सर्जिकल या रेडियालोजिक इलाज है जिससे व्यक्ति विशेष के जनन कार्य बेकार हो जाते हैं अथवा बर्बाद हो जाते हैं। जननांगों में किसी प्रकार का घाव या किसी बीमारी के होने पर ऐसी घटना हो सकती है।

थेराप्यूटिक बंध्यकरण (स्टेरीलाइजेशन) : विधिवत लाइसेंस प्राप्त फिजीशियन या सर्जन कोई ऑपरेशन कर सकता है अथवा किसी रोगी की चिकित्सीय इलाज के लिए सर्जरी कर सकता है यहां तक कि जब ऐसे ऑपरेशन या इलाज से जननकार्य में विघ्न आ सकता हो।

आपराधिक और सिविल पक्षः उन राज्यों में जहां सांविधिक कानून में थेराप्यूटिक बंध्यकरण (स्टेरीलाइजेशन) का प्रावधान किया गया है, किन्तु नॉन-थेराप्यूटिक बंध्यकरण (स्टेरीलाइजेशन) का कोई प्रावधान नहीं है और ऐसे राज्यों में जहां कोई संविधि नहीं है, फिजीशियनों और अस्पतालों को विशुद्ध रुप से सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से बंध्यकरण (स्टेरीलाइजेशन) को अवैध (गैर कानूनी) माना जाना चाहिए। अतः यह आपराधिक प्रकृति का है।

इस तथ्य के दृष्टिगत कि जिन देशों में जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि हो रही है उन देशों में बंध्यकरण अभियानों का विशेष महत्व है ऐसे में कई बार सामाजिक और नीतिगत पहलुओं को नजरअन्दाज कर दिया जाता है (खासकर भारत में आपातकालिक अवधि में) भारत सरकार ने बंध्यकरण (स्टेरीलाइजेशन) के लिए निम्नांकित मार्गनिर्देश दिए हैं।

क. साधारणतया पति की आयु 25 वर्ष से कम और 50 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए।
ख. पत्नी की आयु 20 वर्ष से कम अथवा 45 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए।
ग. अभिप्रेरित दम्पति के पास ऑपरेशन के वक्त दो जीवित बच्चे होने चाहिए।
घ. यदि दम्पति के पास 3 या 3 से अधिक जीवित बच्चे हैं तब पति अथवा पत्नी की न्यूनतम आयु सीमा में ऑपरेशन करने वाले सर्जन के विवेक पर ढील दी जा सकती है।
ड. यदि स्वीकार करनेवाला इस बारे में अपने पति/पत्नी की सहमति ले लेता है कि बिना किसी दवाब, भुलावे अथवा जोर जबरदस्ती से उसका ऑपरेशन कराया जा रहा है और सभी व्यावहारिक प्रयोजनों से यह महिला/पुरुष जानता/जानती है कि यह ऑपरेशन व्युत्क्रमणीय है और पति/पत्नी का पहले स्टेरीलाइजेशन नहीं हुआ है, इतना ही पर्याप्त है।

3.8.5 गोद लेने संबंधी मुद्दे

प्यार सभी बाधाओं को पार कर लेता है और इस भ्रामक सोच को बदल देता है कि ममता के बंधन यदि कोई बांझ स्त्री के प्रसव पीड़ा नहीं झेलती है, बच्चे को जन्म नहीं देती तो उसके मन में ममता नहीं जाग सकती बच्चा गोद लेने वाली मां जिस विधि से मातृत्व/पितृत्व प्राप्त किया जाता है उससे माँ-बाप बनने की कोटि और खुशियॉ न तो कम होती हैं न ही समाप्त होती हैं। गोद लेने से दो तरह के प्राथमिक प्रयोजनों की सिद्धि होती है अर्थात इससे माता-पिता को परिवार बसाने की

जरुरत पूरी हो जाती है, वहीं इसके साथ-साथ बच्चे को पारिवारिक माहौल में बढ़ने पलने का प्यारा सहयोग मिल जाता है। प्राथमिक लाभ के अलावा इससे संबद्ध और भी लाभ हैं। अर्थात अविवाहित/कुँवारी माताएं बच्चे को सौंप सकती हैं इस प्रकार विभिन्न सामाजिक कलंकों से बच जाती हैं और बच्चों को किसी संस्थागत माहौल में पलने बढने के लिए बाध्य नहीं किया जाता है।

भारत में हिन्दू और अन्य धर्मों में गोद लेने के कानून अलग अलग हैं। जबकि हिन्दुओं में गोद लेना हिन्दू गोदधारण एवं अनुरक्षण अधिनियम, 1956 से शासित होता है वहीं दूसरे धर्मों के लोगों के लिए अभिभावक एवं पाल्य अधिनियम 1890 लागू होता है। यह एक स्पष्ट विषमता है और नीतिगत तौर पर गलत है क्योंकि इन दोनों के तहत प्रावधानों के फलस्वरुप गोद लेने के बाद बच्चों के अलग-अलग अधिकार होते हैं।

भारत में गोद लिया जाना अभी भी समाज में स्वीकार्य नहीं है। 1984 में, उच्चतम न्यायालय के फैसले और गोद लेने वाली एजेंसियों द्वारा किए गए प्रयासों के बावजूद बहुत सी ऐसी कठिनाइयां हैं, जिसे गोद लेने की प्रक्रिया में पर्याप्ततः विनियमित अथवा शासित नहीं किया जा सकता है।

गर्भधारण करने में अक्षम बांझ महिलाओं पर इतना बड़ा धब्बा लगता है और भारतीय मनमस्तिष्क में इतना घर कर गया है कि कई माता-पिता चुपके से गोद लेने की योजना बनाते हैं। इसमें गोद लेने वाली माँ को गर्भवती होने का बहाना करना पड़ता है कहीं दूर जाना पड़ता है, अस्पताल चिकित्सक अथवा अन्य संबंधित व्यक्तियों की मदद लेनी पड़ती है। यह नीतिगत तौर पर गलत नहीं है लेकिन इससे माता-पिता जीवन भर भयानक दबाब में रहते हैं।

गोद लिए गए बच्चे के हित में यह श्रेयकर है कि केवल ऐसे माता-पिता को भरोसे में लेने की बजाय सभी परिणामों को विश्वास में लिया जाना चाहिए। इसी प्रकार, सिर्फ माता/पिता द्वारा गोद लिए जाने से बच्चे को अनुकूल परिवारिक परिवेश नहीं मिल पाता है जिसकी उसे जरुरत पड़ती है। भावनात्मक समस्याओं को दूर करने के लिए शैशवास्था (आरंभिक बाल्यकाल) सबसे अच्छी आयु है जबकि बड़े बच्चों में भावनात्मक समस्या उत्पन्न होने की आशंका रहती है। यद्यपि अन्तर्देशीय बच्चों को गोद लेने की प्रथा बहुत अधिक प्रचलित है, लेकिन बच्चों को अपने स्वयं के देश में गोद लिए जाने का पहला विकल्प माना जाना चाहिए। उच्चतम न्यायालय ने भी इस संबंध में मार्गनिर्देश दिए हैं जिनका सख्ती से पालन किया जाना चाहिए।

हमारे देश में, अधिकांश इच्छुक माता-पिता ऐसे बच्चे को गोद लेना चाहते हैं जो स्वस्थ हों, बड़ा हो, गोरा हो, लड़का हो आदि आदि....। गोद लेने वाली एजेंसियों में ऐसे मानदंड बहुत कम होते हैं और ये मान दंड माता-पिता की इच्छा बच्चों को गोद लेने के मूल प्रयोजन से मेल नहीं खाते हैं और नीतिगत दृष्टि से यह गलत है। यह आवश्यक है कि गोद लेने से पहले माता-पिता को इन सभी बातों की जानकारी दी जाये।

अंततः गोद लेने के बारे में और अधिक जागरुकता और ऐसा करने के लिए विधिक प्रक्रियाओं की जरुरत है।

जांच बिन्दु

1. एड्स रोगियों के प्रबंधन में समाविष्ट नीतिगत मुद्दों की चर्चा करें।
2. गर्भपात में कौन से मुद्दे शामिल हैं? क्या मौजूदा चिकित्सीय गर्भपात आपके मत में नीति सम्मत है?
3. यूथैनासिया क्या है? क्या कानूनी दृष्टि से इसकी अनुमति है? यदि हाँ, तो किन परिस्थितियों में।
4. क्या गोद लेने के कानून हमारे देश के सभी नागरिकों के लिए सार्वभौमिकतौर पर लागू होता है? यदि नहीं, तो क्या अलग-अलग समुदायों के लिए इनका अलग-अलग होना नीति सम्मत है?

3.9 नीतिगत मुद्दे और निर्धन रोगी

निर्धनता सबसे पहली सामाजि समस्याओं में से है जिसका सामना बहुत से देश कर रहे हैं। निर्धनता तब आती है जब कोई व्यक्ति पर्याप्त भोजन और इलाज के अतिरिक्त जीवन की दूसरी आ वश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाता है। निर्धनता अमीरी सापेक्ष है। निर्धनता की बात जन मानस के कुछ वर्गों में दूसरे वर्गों की अपेक्षा अधिक की जाती है। अविस्मरणीय समय से ही चिकित्सा पेशे से जुड़े व्यक्तियों ने सभी तरह से गरीब समाज की सेवा की है और निर्धन व्यक्तियों को विशेष महत्व दिया है। वस्तुतः चिकित्सा व्यवसाय को मिली प्रतिष्ठा और इसे एक अच्छा पेशा होने की शब्दावली खासतौर पर यह देखते हुए कि गई है कि चिकित्सक निर्धन और दलित वर्गों को ये सेवाएं प्रदान करता है। 17वीं सदी के आरंभ में चिनशिह कुंज ने कहा :

''निर्धन वर्ग के व्यक्तियों को मुफ्त दवा दी जानी चाहिए। यदि संभव हो, तो दलित रोगियों को अतिरिक्त वित्तीय मदद दी जानी चाहिए। भोजन के बिना केवल दवा से रोगी का कष्ट दूर नहीं होगा।''

समय गुजरने के साथ-साथ स्वास्थ्य बीमा योजना के लागू होने से निर्धनों का विशेष ख्याल हो पाता है। इस संबंध में महत्वपूर्ण विचारणीय प्रश्न हैं :

1. सामाजिक न्याय और स्वास्थ्य सुविधा की समान पहुँच की परिधि के भीतर प्रत्येक व्यक्ति को उसकी जरुरत के अनुसार, उसके गरीब या धनी होने की बात पर ध्यान दिए बगैर सेवाएं दी जानी चाहिएं।
2. उक्त के दृष्टिगत एक समान मामलों के लिए समान इलाज किया जाना चाहिए भले ही वह गरीब हो या धनी।
3. गरीब रोगियों की गोपनीयता का सम्मान किया जाना चाहिए और किसी भी तरह से धनी और गरीब के लिए गोपनीयता के प्रोटोकॉल में विभेद नहीं होना चाहिए।

4. गरीब व्यक्तियों का समान रुप से चयन किया जाना चाहिए और संगत नियमों का पालन किया जाना चाहिए।
5. गरीब व्यक्तियों को उनकी आर्थिक जरुरत के लिए अंग का व्यापार करने के लिए लोभ नहीं दिया जाना चाहिए।
6. गरीब व्यक्तियों का किसी प्रकार से यह सोचकर शोषण (लैंगिक अथवा किसी दूसरी तरह से) नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि वह इलाज के लिए पैसे का भुगतान करने में सक्षम नहीं है।
7. चिकित्सकों को दवा लिखते समय व्यक्ति विशेष की क्षमता और उनकी क्रय क्षमता का अवश्य ध्यान रखना चाहिए।
8. चिकित्सकों को गरीब व्यक्तियों द्वारा बुलाए जाने पर आदर और निष्ठापूर्वक उनके कॉल का जबाब देना चाहिए।
9. गरीब रोगियों को भोजन अधिप्राप्त कर उनके साधनों के भीतर स्वस्थ आदतें विकसित करने की शिक्षा देना चिकित्सकों का नैतिक कर्त्तव्य है।

जांच बिन्दु

1. गरीब और दलित का इलाज करने में चिकित्सकों की नीतिगत जिम्मेदारियां क्या हैं?

3.10 नीतिगत मुद्दे और महिला रोगी

ष उसे महिलाओं के साथ, यहां तक कि नौकरानियों के साथ भी मजाक नहीं करना चाहिए, उन्हें ऐसे नाम से संबोधित नहीं करना चाहिए जो अश्लील हो, उसे उनके प्रति आदरभाव रखना चाहिए, उसे उनके साथ मित्रवत होने अथवा उनसे मिलने-जुलने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। किसी भी महिला से उसके पति अथवा अभिभावक की जानकारी के बगैर कोई गिफ्ट आदि नहीं लेना चाहिए, बिना पूर्व सूचना के उसे उसके निवास स्थान पर नहीं जाना चाहिए।''

कश्यप संहिता

फिजीशियन किसी परिचारक की उपस्थिति में ही किसी महिला, विधवा अथवा साध्वी से मिल सकते हैं, लेकिन अकेले में नहीं। महिला रोगियों के गुप्त रोगों की जांच उच्च प्रवृति से किया जाना चाहिए और किसी के सामने यहां तक कि अपनी पत्नी के सामने भी इसका खुलासा नहीं करना चाहिए।

चीनी संहिता

वेश्याओं/गणिकाओं का इलाज भी किसी अच्छे परिवार के रोगियों की ही तरह किया जाना चाहिए और निर्धन को निःशुल्क सेवा दी जानी चाहिए। हँसी मजाक नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इससे आत्म सम्मान को चोट पहुँचती है। जाँचोपरांत चिकित्सकों (फिजीशियनों) को तत्काल उसका

भवन छोड़ देना चाहिए। यदि स्थिति में सुधार होता है, दवाएं भेजी जा सकती हैं लेकिन पुरस्कार के लिए उन्हें पुनः उससे नहीं मिलना चाहिए।

चीनी कहावत

महिलाओं की स्थिति से संबंधित मुद्दे अभी भी समाज में विवाद का विषय हैं। पुरुष और महिलाओं में प्राकृतिक अंतर और विभिन्न समाज में संपति उत्तराधिकार, अधिकारों की समानता, पेय जल, बच्चों के पालन पोषण, गर्भनिरोध, लैंगिक व्यवहार, विभिन्न संपतियों के मामले में कतिपय स्थिति, वेश्यावृति, पतिव्रता इत्यादि से भिन्न-भिन्न समाजों के भीतर स्वीकार्य मानकों से निपटने में निश्चित रुप से समस्याएं उत्पन्न होती हैं। चिकित्सा व्यवसाय, ऐसा पेशा है इससे पूरे विश्व में उत्कृष्ट व्यवहार और चरित्र उत्पन्न करने का प्रयास किया जाता है। महिला रोगियों के इलाज में ि वशेष ध्यान रखा जाना चाहिए। कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे इस प्रकार हैं :

1. सामाजिक स्थिति का ध्यान रखें बगैर सभी पुरुष व महिलाओं के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए। महिला रोगियों के जाँच में गोपनीयता को सर्वाधिक महत्व दिया जाना चाहिए।
2. महिला रोगियों की जांच करते समय, यथा अपेक्षित उचित सहमति ली जानी चाहिए। इस बात को अधिमान्यता दी जानी चाहिए कि महिला रोगियों की जांच करते समय कोई परिचर उपस्थित होना चाहिए।
3. चिकित्सक को अपने प्रोफेशन का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए, खासकर यौनाचार के इरादे से।
4. गर्भनिरोधक दवा के संबंध में चिकित्सक को इसमें सन्निहित सभी जोखिम को बताना चाहिए और मामले को अपने पास गोपनीय रखना चाहिए।
5. गर्भपात रोकने के मामले में, चिकित्सक को देश के मौजूदा कानून के हिसाब से काम करना चाहिए।
6. गर्भवती महिलाओं को चिकित्सीय शोध के प्रयोजनार्थ रेडियोधर्मी दवा नहीं दी जानी चाहिए।
7. प्रजनन जीव विज्ञान से संबंधित (अर्थात् टेस्ट-ट्यूब बेबी, सरोगेट मदरहूड इत्यादि) के मामले में चिकित्सक को सामाजिक एवं विधिक पहलुओं का ध्यान रखना चाहिए। इस प्रक्रिया में महिलाओं का शोषण नहीं करना चाहिए।
8. बलात्कार पीड़िता महिलाओं की जांच में विशेष ध्यान रखना चाहिए। स्कीम के अनुसार अपेक्षित जांच की जानी चाहिए।
9. चिकित्सक को नारी भ्रूण हत्या और लिंग-निर्धारण, जिससे सामान्यतया महिलाओं के हितों को जोखिम हो, ऐसी प्रैक्टिस नहीं की जानी चाहिए।
10. दहेज-मृत्यु, महिलाओं के उत्पीड़न इत्यादि जैसे मामले जब कभी भी चिकित्सक के समक्ष आएं, उन्हें ऐसे मामले की रिपोर्ट अवश्य दी जानी चाहिए।

जांच बिन्दु

1. महिला-रोगियों से जुड़ी नीतिगत बातें क्या हैं?

3.11 प्रबंधन के मुद्दे

नीतिविषय पर हमारी पूर्ववर्ती चर्चा, यद्यपि बहुत ही अभिरुचिजन्य और आदर्शपरक है, यह दैनिक चिकित्सीय प्रोफेशन में बहुत से प्रबंधकीय प्रश्न उत्पन्न होते हैं, कुछ महत्वपूर्ण मुददे निम्नानुसार हैं :

क. क्या ष्अन्तरात्मा की आवाज ष से ष जीवन के प्रति सम्मान ष की संकल्पना का आधार है?

ख. क्या इसमें ऐसा कोई नैतिक कानून शामिल किया जाना चाहिए जो मानवता के मौलिक कानून की सभी स्थितियों में लागू होगा?

ग. क्या इलाज की यथार्थपरकता दी जाने वाली खुशी अथवा दूर की जाने वाली पीड़ा के आधार पर तय की जा सकती है?

घ. नीतिगत मुद्दे से क्या हम सार्वभौमिक सिद्धान्तों और संकल्पनाओं के विश्लेषण से निरंतर अलग हटने की कोशिश कर रहे हैं?

ड़. क्या नीतिगत ज्ञान से किसी तरह का नैतिक मार्गदर्शन प्राप्त होता है, यथा सद्व्यवहार के नियम अथवा पुण्य और पाप के व्यवहार?

च. हम नीतिशास्त्र और कानून में किस तरह विभेद कर सकते हैं? क्या कोई सार्वभौमिकरण अथवा स्थितिपरक विश्लेषण है?

छ. जनसंख्या नियंत्रण, अनचाहा जन्म, सामाजिक-प्रतिमानों का उदारीकरण, बच्चादानी की स्वतंत्रता आदि, आदि समस्याओं के रहते, क्या बताए गए तरीके से चिकित्सा-पेशा चलाना सचमुच संभव है?

ज. नीतिगत मुद्दों से प्रायोगिक चिकित्सा संबंधी समस्याएं उत्पन्न होती है - विभिन्न संस्थानों/एसोसिएशनों द्वारा जारी विभिन्न अनुदेश व्यावहारिक पक्षों से मेल नहीं खाते। नीतिगत दृष्टि से इसे न्यायोचित ठहराना कठिन हो सकता है लेकिन फिर भी समाज के व्यापक हित में ये आवश्यक हैं। बचावकारी प्रतिबंध चिकित्सा यंत्र में होनेवाली प्रगति विशेष रुप से औद्योगिक फार्मास्युटिकल अनुसंधान के मामले में खतरा उत्पन्न होता है।

झ. वित्तीय दृष्टिकोण से चिकित्सकों के लिए बहुत बड़ी नीतिगत समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं यथा यह तय करना कि किन रोगियों को हीमोडायलीसीस दिया जाए।

ण. नीतिगत सिद्धान्तों में विरोधाभासः नीतिगत निर्णयों में बड़ी समस्या और जिससे ये उलझन बन जाते हैं, वह यह है कि दो नीतिगत सिद्धान्त अथवा कर्त्तव्य एक दूसरे से मेल नहीं खाते। ये एक ही संघटक के भीतर हो सकते हैं। उदहराणार्थ - स्वायत्तता के क्षेत्र में चिकित्सक और रोगी की स्वायत्तता के मध्य द्वन्द्व हो सकता है। दूसरी तरफ इसके विलोमतः दो विभिन्न संघटक - उदाहरण के तौर पर भ्रूण का मोल और माँ की स्वायत्तता के बीच द्वंद्व हो सकता है। दोनों में से किसी एक सिद्धान्त को अधिक महत्व देनेन से ही नतीजा निकल सकता है। कोई महिला रोग विशेषज्ञ यह निर्णय ले सकती है कि भ्रूण का महत्व इतना कम है कि गर्भपात का निर्णय केवल स्वायत्तता के आधार पर ही हो सकता है, अब यह फैसला करना मां के हाथ में है। तब वह उसके एक या दूसरे कार्य के संबंध में शारीरिक एवं भावनात्मक परिणामों के बारे में ही विशुद्ध रुप से सलाह देगी। किन्तु दूसरी लेडी डाक्टर यह तर्क देगी कि यह स्वायत्तता परिमित होनी चाहिए और यहां तक कि मानवीय मूल्यों के सिद्धान्त के अधीन होनी चाहिए। तीसरी लेडी डाक्टर इससे भी आगे जा सकती है और ऐसा मान सकती है कि भ्रूण को महत्व देना सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है और माँ की बात इस मामले में बिलकुल नहीं चलनी चाहिए और उसकी स्वायत्तता नहीं मानी जानी चाहिए। (पूर्ण - माध्यमों से)

विरोधाभासी सिद्धान्तों के बारे में निर्णय को निम्नांकित रुप में दर्शाया गया है।

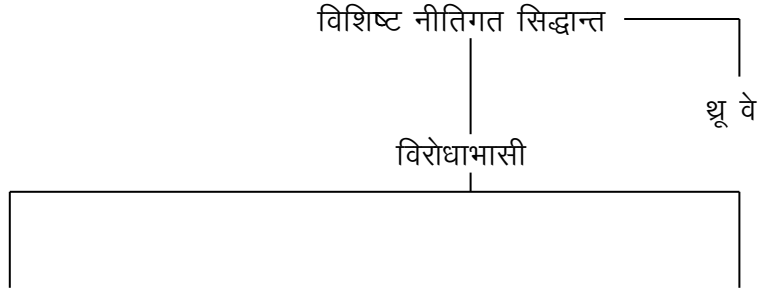

ट. आर्थिक संकट, इलाज की गुणवत्ता, चिकित्सा सेवा का युक्तिकरण और नीतिगत मुद्दे इतने अधिक महत्वपूर्ण मुद्दे होते हैं कि फिजीशियन को आयु और उत्पादकता के संदर्भ में व्यक्ति के महत्व पर विचार करना पड़ता है, चिकित्सक इस उलझन में पड़ जाता है कि क्या मानव शरीर का मूल्य बूढ़ा हो जाने पर कम हो जाता है?

ठ. चिकित्सक की स्वायत्तता - यदि हमें रोगी की स्वायत्तता का सम्मान करना है तो चिकित्सक की स्वतंत्रता के क्या मायने हैं? नैदानिक स्वतंत्रता वर्षों से चिकित्सकों का तकियाकलाम रहा है और इसका अर्थ है कि उसके और रोगी के बीच कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। कभी-कभी इसका प्र ायोग चिकित्सीय नैतिकता से अधिक ढाल के रुप में किया गया है। कोई परामर्शदाता दावा कर सकता है कि उसे नवीनतम महंगी दवा से सभी रोगियों का इलाज करने की आजादी है भले ही इसका अर्थ यह हो कि इलाज के दूसरे क्षेत्र में धन की कमी हो जाएगी। क्या नैदानिक स्वतंत्रता में परिस्थितियां और कार्यस्थल के साथ बीसवीं सदी की स्थितियों में किसी खास किस्म का थोड़ा सा अंतर करने का अधिकार शामिल किया जाना चाहिए। अधिकारों में दायित्व भी होते हैं। दुर्लभ संसाधनों के प्रयोग में दायित्व और अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ चिकित्सक के अधिकार हैं और उसकी स्वतंत्रता पर संदेह किया जाना चाहिए।

ड. क्या रोगी स्वायत्तता के योग्य हैः किसी अचेत अव्यस्क अथवा मानसिक तौर पर अक्षम रोगी के मामले में रोगी के अंततः स्वास्थ्य लाभ और उनकी देख-रेख करनेवाले रिश्तेदारों के सुख के बीच द्वन्द्व हो सकता है।

हमें अपने रोगियों का इलाज प्रत्येक मामले के गुणावगुण के आधार पर करना चाहिए। यह चिकित्सीय नीति की चर्चा का सामान्य लक्ष्य है इसका अभिप्राय यह है कि हमें अपना कर्तव्य पूरी ईमानदारी से निभाना चाहिए। हम ठीक निर्णय लेंगे। चिकित्सक-रोगी के संबंध में रोगी का आदर मौलिक तथ्य है और हम आदर दर्शाते हैं तो इससे परिलक्षित होता है कि हम रोगी को कितना महत्व देते हैं।

3.12 यूनिट समीक्षा प्रश्न

1. चिकित्सीय नीतिशास्त्र को परिभाषित करें? चिकित्सकों के लिए बनाई गई आचार संहिताओं में दी गई महत्वपूर्ण घोषणाओं की विवेचना करें?
2. दैनिक व्यवहार में सामान्य विधिक एवं नीतिगत समस्याएं क्या हैं? आप उनसे कैसे निपटेंगे?
3. अस्पताल के कार्यकलापों में चिकित्सा से संबद्ध नीति कैसे प्रयोज्य है? अस्पताल के प्रबंधकों के लिए इनसे किस प्रकार के अवरोध उत्पन्न होते हैं?
4. एड्स, गर्भपात, परिवार-नियोजन, यूथानैसिया इत्यादि जैसी कुछ समस्याएं चिकित्सा-जगत में निरंतर विवादास्पद मुद्दे बने हुए हैं। विवेचना करें।
5. निर्धन एवं दलितों के प्रति चिकित्सकों की नैतिक जवाबदेही की विवेचना करें।
6. चिकित्सीय नीति से उत्पन्न प्रबंधकीय मुद्दों का वर्णन करें? आप इनसे कैसे निपटेंगें?

3.13 संस्तुत अध्ययन/संदर्भ साहित्य

1. नाइट, बर्नार्ड - लीगल आस्पेक्ट्स ऑफ मेडिकल प्रैक्टिसः चर्चिल लिविंगस्टोन-1992
2. सिंह, जगदीशः मेडिकल प्रोफेशन एण्ड कंज्यूमर प्रोटेक्शन एक्ट, भारत लॉ पब्लिकेशन्स, जयपुर, 1994।
3. कोड ऑफ मेडिकल एथिक्सः मेडिकल कांउसिल ऑफ इन्डिया, कोटला रोड, नई दिल्ली-2
4. पर्सी, एवलीनः अ जेनरल टेक्स्टबुक ऑफ नर्सिंग, फेबर एण्ड फेबर, लंदन, 1971
5. नैन्सी सिनीयरः प्रिन्सिपल्स एण्ड प्रैक्टिस ऑफ नर्सिंग, एन.आर.ब्रदर्स, इन्दौर
6. डीसूजा ई जे., एथिकल एण्ड लीगल इश्यूज एण्ड एड्स, जीमा, बॉल्यूम, 91 संख्याः12.
7. ओवन, मॉडर्न कन्सेप्टस ऑफ हॉस्पीटल ऐडमिनिस्ट्रेशन, डब्लू बी. सांडर्स एण्ड कं., फिलडेल्फिया, लंदन, 1962
8. ट्रॉबेल, डुग, द अनफिनिश्ड डिवेट ऑन यूथानैसिया, एस.सी.एम. प्रेस लि.
9. कर्निजर, मार्गेरेट - एडॉप्शन, पुटमैन एण्ड कंपनी, लंदन, 1970
10. विद्याभूषण एण्ड सचदेवा - ऐन इन्ट्रोडक्शन टू सोशियोलोजी किताब महल, 1998
11. बांकोस्की एण्ड जोन्स, एन.हाबर्ड - ड्रयूमैन एक्सपेरिमेंटेशन एण्ड मेडिकल इथिक्स XV सी.आई.ओ.एन.एस. राउंड टेबल कांफ्रेंस काउंसिल फॉर इन्टरलेशनल ऑर्गेनाइजेशन्स ऑफ मेडिकल साइंसेज, 1982
12. लैमर्स, स्टीफन ई एण्ड वर्ही एलेः ऑन मोरल मेडिसीन - विलियम बी. अरडमौन्स पब्लिशिंग कंपनी, 1987
13. कैम्पबेल - एलास्टेयर बी. मीरल डिल्लेमा इन मेडिसीन - चर्चिल लिविंग स्टोन, लंदन, न्यूयॉर्क, 1984
14. जॉनसन, एलन जीः पाथवेज इन मेडिकल इथिक्सः एडवार्ड आर्नोल्ड, लंदन मेलवॉर्न, ऑकलैंड, 1990
15. शौन टेस्ट ऑफ गाइनो लोजी X संस्करण संपादक, बी. पदुवीदरी एण्ड एस.एन.दफ्तरीः बी.आई.चर्चिल लिविंगस्टोन प्राइवेट लि., नई दिल्ली-1990 ।